R.N.I. No. 2321/57

अगस्त 2016

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18

अंक 7

तपोभूमि

मासिक

वेदमन्दिर, मथुरा में गुरू पूर्णिमा का पर्व सम्पन्न

विगत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी गुरू पूर्णिमा का पर्व 18-19 जुलाई को उत्साह सहित सम्पन्न हुआ। जैसाकि पुरातनकाल से परम्परा चली आ रही है कि गुरूकुलों में नवीन शिक्षा का सत्र आषाढ़ की पूर्णिमा से ही प्रारम्भ होता है। इसी अवसर पर माता-पिता अपने बच्चों को गुरुकुलों में जाकर उत्तम विद्वान् बनाने के लिए आचार्यों को समर्पित करते थे। इसीलिये इस पर्व का नाम गुरुपूर्णिमा पर्व के रूप में सिद्ध हुआ। उसी परम्परा का निर्वहन करते हुए वेद मन्दिर में भी गुरुकुल विश्व विद्यालय वृन्दावन में प्रविष्ट हुए नवीन 35 ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से गुरुकुल वृन्दावन के प्राचार्य आचार्य हरिप्रकाश जी के आचार्यत्व में सम्पन्न हुआ। उपनयन संस्कार के विषय में उसकी महत्ता अनिवार्यता और उपयोगिता के बारे में विस्तृत रूप से बताया गया। फरीदाबाद से पधारे गुरुकुल विश्वविद्यालय के मुख्य अधिष्ठाता श्री कृष्णवीर जी शर्मा इस यज्ञ के मुख्य यजमान रहे।

उपनयन संस्कार के उपरान्त भरतपुर निवासी ब्रह्मचारी गुरुदत्त और मथुरा निवासी आर्य समाज के निष्ठावान कार्यकर्त्ता पूरनसिंह आर्य का इसी दिन जन्मदिवस होने के कारण जन्मदिवस सम्बन्धी आहुति दोनों ने प्रदान की। उपस्थित जन समुदाय ने समवेत स्वरों में वेदमन्त्रों के द्वारा दोनों की दीर्घायु और स्वस्थ व सुखी जीवन की कामना की। इसके बाद जनपद पलवल (हरियाणा) के मीतरोल गाँव के श्री डालचन्द आर्य जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में लगाया। और अपना गृहस्थ आश्रम भी चलाया। इस अवसर पर उन्होंने भावना व्यक्त की कि अब मैं महर्षि दयानन्द के निर्देशानुसार वैदिक आश्रम व्यवस्था का पालन करता हुआ अपना गृहस्थ जीवन पूरी तरह से परित्याग कर रहा हूँ और सर्वात्मना वानप्रस्थ दीक्षा लेकर आर्यसमाज का कार्य करता हुआ आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त करूँगा। उपस्थित जन समुदाय ने उनके इस संकल्प का करतल ध्वनि से स्वागत किया। तदोपरान्त विधिवत् यज्ञ प्रक्रिया को पूरा करके वानप्रस्थ की दीक्षा ली। और सभी उपस्थित वानप्रस्थी और संन्यासियों के विचारानुसार अपना नया नाम दयालु मुनि रखकर प्रसिद्ध किया। वानप्रस्थ दीक्षा के बाद उपस्थित अन्य लोगों ने भी उपनयन संस्कार की महत्ता को समझते हुए यज्ञोपवीत को ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की। उनकी भावना के अनुसार सबको यज्ञोपवीत प्रदान किया गया। यज्ञ में इनके द्वारा वृत आहुतियां दिलाई गई और वचन लिया गया कि भविष्य में हम पूर्णता वैदिक जीवन को व्यतीत करेंगे। और उसके प्रतीक इस धागे को कभी गले से परित्यक्त नहीं होने देंगे। सभी यज्ञोपवीत लेने वालों को उनके संकल्प सफल करने के लिये जन समुदाय ने शुभ कामनायें व आशीर्वाद दिया। पूर्ण आहुति के बाद सत्संग का भावभीना कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर उपस्थित हुए भजनोपदेशक लाखनसिंह आर्य माल मथुरा, श्री देवीसिंह आर्य अकबरपुर मथुरा, श्री उदयवीर आर्य अकबरपुर मथुरा ने अपने सुन्दर भजनों के द्वारा उपस्थित जन समुदाय को वैदिक सिद्धान्तों से परिचित कराया। ढोलक वादक राजवीरसिंह ने भी सबका संगति करने का साथ दिया। गुरुकुल के ब्रह्मचारी राष्ट्रवसु ने ईश्वर भक्ति और महर्षि महिमा के गीतों के सुन्दर प्रस्तुति दी। जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। उसके बाद वेद मन्दिर मथुरा के अनन्य सहयोगी बगरूं जयपुर (राजस्थान) से पधारे विद्यासागर झालानी व उनके परिवार ने यज्ञ के समय वेदपाठ करने वाले ब्रह्मचारी प्रशान्त आर्य, ब्रह्मचारी अरविन्द आर्य, ब्रह्मचारी आकाश आर्य, एवं संगीत के माध्यम से गीत प्रस्तुत करने वाले ब्रह्मचारी राष्ट्रवसु आर्य को वस्त्र प्रदान कर सम्मानित किया।

गुरुकुलों में आर्ष प्रणाली के पठन-पाठन की व्यवस्था थी। महर्षि पाणिनि लिखित ग्रन्थ अष्टाध्यायी

शेष पृष्ठ संख्या 35 पर-

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–62 संवत्सर 2073 अगस्त 2016 अंक 7

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अगस्त 2016

सृष्टि संवत्
1960853117

दयानन्दाब्दः 193

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
पुराणों को किसने बनाया	–डॉ0 श्रीराम आर्य	5–8
खराब आदतें न पड़ने देना चाहिये	–बाबू सूरजभान वकील	9–12
ब्रह्मचर्य–विज्ञान	–जगननारायण देव	13–16
ऋषिवर देव दयानन्द की राष्ट्र को देन	–खुशहालचन्द्र आर्य	17–18
फिर मन बता कैसे लगे?		19–20
जरा वर्ग	–सत्यदेव परिव्राजक	21
जीना है तो मित्रता कीजिए		22–23
बच्चे और अनुशासन		24–25
शिक्षा		26–28
शील का सर्वोत्तम स्थान	–हरिनाम दास	29–32
बिना परीक्षा के व्याह	–हनुमानप्रसाद शर्मा	33
जाति कभी नहीं छुपती		34

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ0 रामनाथ वेदालङ्कार

रोहणी औषधि

यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत्परुषा परुः।। –अथर्व0 4.12.7

शब्दार्थः–

(यदि) यदि (कर्तम्) छेदक शस्त्र ने (पतित्वा) गिरकर (संशश्रे) बड़ा घाव कर दिया है, (यदि वा) अथवा यदि (प्रहृतः अश्मा) प्रहार किये हुए पत्थर ने (जघान) चोट पहुँचायी है, तो (ऋभू) शिल्पी (रथस्य अङ्गानि इव) जैसे रथ के अंगों को जोड़ देता है, वैसे ही रोहणी औषधि (परुषा परुः) पोर से पोर की (संदधत्) संधान कर दे, जोड़ दे।

भावार्थः–

हे रोहिणी ओषधि! तू घाव को भरने वाली है, कटी हड्डी को जोड़ देने वाली है। हे घाव भरनेवाली! इस मेरे घाव को भर दे। हे रोगी! जो तेरा अंग क्षतिग्रस्त हुआ है, जो तेरा अंश जल गया है, जो तेरा अंग पिस गया है, कुचला गया है, उसे जोड़नेवाला चिकित्सक भद्र प्रकार से रोहणी ओषधि द्वारा पोर को पोर से जोड़ दे। हे क्षतिग्रस्त मनुष्य! रोहणी ओषधि द्वारा तेरी मज्जा मज्जा से जुड़ जाये, पोर पोर से जुड़ जाये, तेरे मांस का जो कटा भाग है वह मांस से मिल जाये, तेरी हड्डी भी जुड़ जाये। रोहणी ओषधि द्वारा तेरी मज्जा से मज्जा का संधान हो जाये, त्वचा से त्वचा का संधान हो जाये, तेरा रुधिर निकलना बन्द हो जाये, तेरी हड्डी उग आये, मांस मांस से मिल जाये। हे रोहणी ओषधि! तू लोम को लोम के साथ चिपका दे, त्वचा को त्वचा के साथ चिपका दे। तेरी डंठल रुधिर निकलना बन्द कर दे, हे ओषधि! तू कटे को जोड़ दे। हे कटे-कुचले हुए मनुष्य! तू उठ खड़ा हो, चलने लग, दौड़ने लग, सुचक्र, सुपवि, सुनाभि रथ के समान ऊँचा खड़ा होकर प्रतिष्ठित हो जा।

प्रस्तुत मन्त्र कह रहा है कि किसी धारदार शस्त्र ने गिरकर शरीर के किसी अंग में गहरा घाव कर दिया है अथवा किसी प्रहार किये हुए नुकीले पत्थर ने गुम चोट या घावसहित चोट पहुँचायी है, तो रोहणी ओषधि पोर से पोर को जोड़ दे। उपमा दी गयी है कि जैसे मेधावी शिल्पी कारीगर किसी टूटे हुए रथ के अंगों को जोड़कर ऐसा रथ बना देता है कि मालूम भी नहीं पड़ता कि वह कभी टूटा भी था, ऐसे ही रोहणी ओषधि घावों को ऐसा भर दे कि ज्ञात भी न हो कि यहाँ घाव हुए थे।

वैद्य जनों को उचित है कि इस वेदोक्त रोहणी ओषधि की छानबीन करके इसका प्रयोग करें और देखें कि किस प्रकार वेदोक्त परिणाम निकल सकते हैं। ❁❁❁

गतांक से आगे–

पुराणों को किसने बनाया?

लेखकः आचार्य डॉ0 श्रीराम आर्य

भावार्थ– ब्रह्माजी ने अपने आधे शरीर से **'शतरूपा'** को उत्पन्न किया और उसे अपनी पुत्री मानने लगे॥ 30-31-32॥

तदनन्तर उसके सौन्दर्य को देखकर काम के बाणों से पीड़ित हुए उसके मुँह को देखकर बारम्बार कहने लगे कि इसका रूप-सौन्दर्य कैसा आश्चर्यकारी है? इसके बाद उस सुन्दर रूप-रंग वाली सरस्वती ने अपने पिता ब्रह्मा की प्रदक्षिणा की। उस समय पुत्रों की उपस्थिति से लज्जित होकर ब्रह्माजी का मुँह उसे देखने की इच्छा करके दाहिनी ओर से पीला हो गया और ओष्ठ फड़कने लगे।

ब्रह्माजी ने अपने पुत्रों को सृष्टि की रचना करने को अन्यत्र भेज दिया और फिर उनके चले जाने के बाद काम बाणों से महापीड़ित हुए।

ब्रह्माजी नम्रमुखी और अनिन्दित अपनी पुत्री शतरूपा नाम की स्त्री को ग्रहण करके बड़ी लज्जा से युक्त होकर 10 दिव्य वर्ष पर्यन्त साधारण मनुष्यों के समान उसमें रमण करते रहे और उसी मैथुन के परिणामस्वरूप उनका पुत्र 'मनु' पैदा हुआ॥ 30-44॥

समीक्षा– जिस ब्रह्मा को वेदकर्त्ता एवं सारे जगत का उत्पादक ईश्वर माना जाता है, उस पर पुत्री गमन का भयंकर लांछन लगाने वाली इस मूर्खतापूर्ण कथा को लिखने वाला भी कोई वैसा ही धूर्त व्यक्ति हो सकता है।

महानात्मा वेदव्यास जी की लेखनी से ऐसी गन्दी कथाओं वाले पुराण बनाये जा सकते हैं, यह विश्वास करने के योग्य बात नहीं है।

सूर्यनारायण की चरित्रहीनता

एक समय निक्षुभा को शाप मिला। तब उसने **'ऋजिह्व'** नाम की ऋषि कन्या के रूप में जन्म लिया। वह अपने पिता की आज्ञा से अग्नि की सेवा किया करती थी।

एक दिन उसको सूर्य नारायण ने देखा। उसका उत्तम रूप और यौवन देखकर सूर्यनारायण काम के वश में हो गये और विचार कर अग्नि में प्रवेश किया।

वह कन्या अग्नि की प्रदक्षिणा कर रही थी, तभी उसी समय अग्नि से प्रकट हो सूर्यनारायण ने उस कन्या का हाथ पकड़ लिया और क्रोध में भरकर कहा कि तूने हमारा उल्लंघन किया है। अब हम तेरे में पुत्र उत्पन्न करेंगे। इतना कह.....उसमें पुत्र उत्पन्न किया। उसका नाम **'जलगण्ड'** हुआ।

पुत्रोत्पत्ति के बाद सूर्यनारायण अन्तर्ध्यान हो गये। पता लगने पर कन्या के पिता ने कन्या को श्राप दिया कि तूने अपनी चंचलता से पुत्र उत्पन्न किया है इसलिए यह अपूज्य होगा।

–(भविष्य पुराण भाषा 'लखनऊ छापा' पूर्वार्ध अध्याय 133)

समीक्षा– सूर्य नारायण ने इस कथा में एक निष्कलंक ऋषि पुत्री के साथ बलात्कार किया है। इसी प्रकार इन्हीं सूर्यनारायण ने क्वारी कुन्ती के साथ भी बलात्कार करके **'कर्ण'** को पैदा किया था।

वास्तव में सूर्यनारायण व्यभिचारी थे या नहीं? यह तो पृथक् बात है, पर भविष्य पुराण ने तो लिखकर उनको व्यभिचारी बना ही दिया है।

यदि पुराण व्यासकृत होते तो कम से कम देवताओं को, जो श्रेष्ठ गुणों से युक्त होने चाहिए थे, उनको दुश्चरित्र न लिखा गया होता।

वीर्य पीने का विधान

तृतीयं तत्परं स्थानं केदारं चेति विश्रुतम्।
मच्छरीराद्विनिष्क्रान्त शुक्राख्यं पानमुत्तमम्।। 12।।
केदारमुदकं देवि ये पिबन्ति महाजनाः।
मम तुल्य बलाः सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिनः।। 13।।
तस्यास्तोयं शरीस्थं मम लिंगाद्विनिःसृतम्।
मृतो यत्र गतो वापि स्कन्दस्य सदृशोभवेत्।। 20।।

–(केदार कल्प, पटल 5)

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवी केदारस्य तु यत्फलम्।
मम वीर्य स्थितं देवि केदारं तीर्थ मुत्तमम्।। 1।।

–(केदार कल्प, पटल 7)

कामयेत्स्त्री सहस्राणि पिवेत्केदार शम्बरम्।
पीत मात्र जले देवि किंमर्थ परितप्यते।। 5।।

–(केदार कल्प, पटल 10)

अर्थ– शिवजी बोले–उसके आगे केदार नामक स्थान है, वह मेरे शरीर से निकला हुआ शुक्र अर्थात् वीर्य है और पान करने योग्य है॥ 12॥

हे देवि! जो पुरूष केदार के जल को पीते हैं, वे मेरे समान पराक्रमी हो स्वेच्छाचारी होते हैं॥ 13॥

मेरे लिंग में से निकला हुआ केदार का जल जिसके शरीर में स्थित हो, वह मनुष्य जहां कहीं भी जायेगा, तो वह स्वामी कार्तिकेय के समान होगा॥ 20॥

शिवजी बोले–हे देवि! मैं केदार के फल को कहता हूँ, यह उत्तम तीर्थ मेरे वीर्य से स्थित हुआ है॥ 1॥

सहस्रों स्त्रियों की कामना करने वाला मनुष्य, उस केदार के उत्तम जल अर्थात् शिव के वीर्य को

पीये॥ 5॥

समीक्षा– शिवजी का शुक्रपात हुआ, उसी से केदार कुण्ड का जल बन गया। उसे पीने से सर्वकामना पूर्ण होती है तथा व्यभिचार के लिए बहुत सी औरतें भी उस शिव वीर्य को पीने वाले व्यक्ति को ही मिलती है।

ऐसी बेहूदी बात कि–वीर्य पान करो और विषय भोग के लिए औरतें प्राप्त करो, कदाचित् सनातन धर्म के अवतार व्यास जी की सूझ तो हो ही नहीं सकती।

यह बात इसका प्रमाण है कि यह पुराण व्यास कृत न होकर किन्हीं वाममार्गीय सम्प्रदाय वालों ने बनाये होंगे, जिनके पन्थ में रज वीर्य का पीना धर्म माना जाता है।

सात समुद्रों की विलक्षण प्रकार से उत्पत्ति

राजा प्रियवृत के बारे में लिखा है कि–उन्होंने पृथ्वी का 11 अरबुद वर्षों तक राज्य किया था। एक बार उन्होंने विचार किया कि–

यावदवभासयति सुरगिरि मनुपरिक्रामन भगवानादित्यौ वसुधातल मर्वेनैव प्रत्यत्यर्थेतावच्छादयति तदाहि भगवदुपानसनोपचिताति पुरुष प्रभावस्तदनभिनंदन समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपिदिनं करिष्यामीति सप्त कृत्वस्तरणिमनु पर्यक्रामद् द्वितीय इव पतंगः॥ 30॥

ये वा उहतद्रथचरण नमिकृत परिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन् यत् एव कृताः सप्त भुवोद्वीपाः॥ 31॥

–(श्रीमद् भागवत् पुराण स्कन्द5, अध्याय 1)

अर्थ– जब तक सूर्यनारायण सुमेरू पर्वत अर्थात् हिमालय की परिक्रमा करते, दिन में तपते और रात में अस्त होकर आधे–आधे समय प्रकाश और अन्धकार करते हैं सो दिन में भगवत आराधन से वर्द्धित प्रभाव पुरुषों को रात्रि में अन्धकार होने से दुखित जानकर सूर्य के समान वेग वाले प्रकाशमान रथ में चढ़कर रात्रि को भी दिन करने की इच्छा से उन्होंने सूर्य की सात बार परिक्रमा की और दूसरे सूर्य के समान प्रकाशित हुए॥ 30॥

उस परिक्रमा करने से जो उनके रथ के पहियों से लकीर के निशान अर्थात् खाई बनी तो वे ही सात समुद्र हुए और उनके बीच की भूमि पर सात द्वीप बन गये॥ 31॥

समीक्षा– राजा प्रियवृत के रथ के पहियों से जो लकीर बनी उससे सात समुद्र बन गये? यह भी खुला पौराणिक गपोड़ा है। यदि पुराणों को महर्षि वेदव्यास जी ने बनाया होता तो ऐसे बुद्धि के विपरीत बे–सिर–पैर वाले गपोड़े उन्होंने न लिखे होते।

वृक्ष वनस्पतियों की उत्पत्ति

कन्दपस्य करागे्रतु कदम्बश्चारु दर्शनः।
तेन तस्य परीप्रीतिः कदम्बेन विवर्धते॥ 2॥

यक्षाणमधिपस्यापि मणिभद्रस्य नारद।
वट वृक्षः समभवत्त स्मिस्तस्यरतिः सदा।। 3।।
महेश्वरस्य हृदये धत्तूर विष्टपः शुभः।
संजातः स च सर्वस्य रति कृतस्य नित्यशः।। 4।।
ब्रह्मणो मध्यतो देहाज्जातो मरकतप्रभः।
खादर कंटकी श्रेयानभवद्विश्वकर्मण।। 5।।
गिरिजायाः करतले कुन्द गुल्मस्त्वजायत।
गणाधिपस्य कुम्भस्थे राजते सिन्धु वारकः।। 6।।
यमस्य दक्षिणे पार्श्वे पलाशो दक्षिणोत्तरे।
कृष्णोदुम्बर कोरोद्रो जातः क्षोभकरोव्यय।। 7।।
स्कन्दस्य बन्धु जीवश्चरवेरश्वत्थ एव च।
कात्यायन्याः शमो जातः बिल्वो लचाम्याः करेऽभवेत्।। 8।।
नागानां मुखतो ब्रह्मंछरस्तंवोव्यजायत।
बासुकेर्विस्तृते पुच्छे पृष्ठे दूर्बा सितासिता।। 9।।
साध्यानां हृदये जातो वृक्षो हरित चन्दनः।
एव जातेषु सर्वेषु तेन तत्र रतिर्भवेत्।। 10।।

–(वामन पुराण अध्याय 17)

अर्थ– कामदेव से–कदम्ब, कुबेर से–वट, महादेव के हृदय से–धतूरा, ब्रह्मा की देह के मध्य भाग से–खैर, विश्वकर्मा के शरीर से–कण्टकि, पार्वती के हाथ के तलवे से–कुन्द, गणेश के मस्तक से–सँभालू, यमराज के दाहिने पार्श्व से–काला गूलर, स्वामिकार्तिकेय के शरीर से–जीयापोता, सूर्य के शरीर से–पीपल, कात्यायनी के शरीर से–शमी, लक्ष्मी के हाथ से–बेल, साँपों से–शास्तव, वासुकी सर्प की विष्टित पूंछ के पृष्ठ भाग से–सफेद और काली दूब तथा साध्व देवताओं के हृदय से–हरित चन्दन पैदा हुआ। इस प्रकार जो–जो जिसके शरीर से उत्पन्न हुए उनमें उन–उनकी प्रीति हुई।

नोट– इसी प्रकार से पशु–पक्षी, जलचर–नभचर व थलचर जीवों एवं वृक्ष व वनस्पति की उत्पत्ति स्त्रियों के गर्भ से होने का वर्णन, भागवत पुराण स्कन्द 6 में तथा महाभारत शान्ति पर्व, अध्याय 166 श्लोक 17 से 20 तक में भी दिया गया है।

समीक्षा– मानव स्त्रियों अथवा देव शरीरों से पशु पक्षी व वृक्षादि की उत्पत्ति की गप्प ठोकना जनवंचक साधारण कथक्कड़ों का ही काम हो सकता है, महाविद्वान् महर्षि वेदव्यास जी महाराज का नहीं। स्पष्ट है कि ऐसी बेहुदी कहानियों वाले **'पुराण'** व्यासकृत नहीं हैं।

–(शेष अगले अंक में)

खराब आदतें न पड़ने देना चाहिए

लेखकः बाबू सूरजभान वकील

जिस प्रकार लट्टू पर डोरा लपेटकर घुमाने से वह लट्टू डोरा अलग हो जाने पर भी बहुत समय तक घूमता रहता है, उसी प्रकार संसार की सभी वस्तुयें संस्कारों के अधीन हो जाती हैं, अर्थात् वे अपने अभ्यास के वशीभूत हो जाने पर आपसे आप वैसा ही काम करने लगती हैं और उसके विरुद्ध चलने में झिझकती हैं। यही अभ्यास बढ़ते-बढ़ते एक प्रकार का स्वभाव बन जाता है और फिर उस अभ्यास का छुटाना या जरूरत के समय उसे दूसरे मार्ग पर चलाना कठिन हो जाता है। इसी कारण बहुत से मुनष्य अपनी आदत के लाचार होते हैं और मौका बेमौका, समय कुसमय उसी आदत के अनुसार चलकर तकलीफ उठाते हैं, बड़ी-बड़ी विपत्तियों में पड़ जाते हैं और फिर भी अपनी उस आदत को नहीं छोड़ सकते हैं। इस कारण मनुष्य को उचित है कि वह अपने में भली या बुरी किसी प्रकार की आदत न पड़ने दे, सब तरह से स्वतंत्र रहे और जब जैसी जरूरत हो उसी के अनुसार चले; परन्तु यदि इतना न हो सके तो कम से कम बुरी आदतें तो कदापि न पड़ने दे और इसके लिए पूरी-पूरी सावधानी रक्खे।

मनुष्य को सबसे जल्दी और सुगमता के साथ उन सब चीजों के खाने पीने और सूंघने आदि की आदत पड़ती है-जो नशा करती हैं। नशे की ये सब चीजें बहुधा बहुत ही बदमजा और दुर्गन्धयुक्त होती है कि जिनके खाने या सूंघने से कै आती है, या सिर में चक्कर आकर बेहोशी सी हो जाती है। परन्तु थोड़े ही दिनों में जब इन चीजों की आदत पड़ जाती है तब इनके कारण शरीर में बड़े-बड़े रोग पैदा हो जाने पर भी इनके छोड़ने को जी नहीं चाहता है, और यदि किसी प्रकार इनके छोड़ने की इच्छा भी की जाय तो इनका छोड़ना असम्भव सा हो जाता है। इन नशों की शीघ्र आदत पड़ जाने का कारण यह मालूम होता है कि इनसे मनुष्य का दिमाग खराब हो जाता है, विवेकशक्ति शिथिल पड़ जाती है और भले बुरे की पहिचान घट जाती है। इन नशों से शरीर में थोड़ी देर के लिए ग़रमी बढ़ जाने और चेतनता सी मालूम होने पर मनुष्य समझ लेता है कि हमारा बल बढ़ गया है और वह आनन्द मनाने लगता है। ये सब नशे किसी प्रकार भी न तो मनुष्य के कुछ काम ही आते हैं और न उसको सुख पहुँचाते हैं, बल्कि उसके शरीर का सत्यानाश करके उसमें अनेक प्रकार के भयंकर रोगों को पैदा कर देते हैं; और अगर किसी समय नशे के मिलने में देरी हो जाती है तो वे उसकी बहुत ही बुरी हालत बना देते हैं। इसीलिए नशेबाज अपने सभी जरूरी कामों को छोड़कर नशा पूरा करने की अधिक फिकर रखते और अपने नशे को ही सबसे मुख्य कार्य समझते हैं। यही कारण है कि उनके जरूरी से जरूरी काम भी पड़े रहते हैं और उनकी गृहस्थी बिगड़ जाती है। अतएव मनुष्य को इन नशों को कभी अपने पास नहीं फटकने देना चाहिए और सदैव इनसे दूर रहना चाहिए।

बहुत से मनुष्य इन बुरी आदतों से बचने के लिए अपने ऊपर एक प्रकार की जबरदस्ती सी किया करते हैं, अर्थात् वे ऐसी चीजों के त्याग की कसम खा लिया करते हैं; परन्तु हमारी समझ में जो मनुष्य इतना कमजोर है कि आगे अपनी विवेकशक्ति से काम नहीं ले सकता है और बिना कसम खायें बुरी बातों से नहीं बच सकता है, उससे इस बात की क्या आशा की जा सकती है कि वह आगे अपनी कसम कायम रख सकेगा या नहीं। क्योंकि व्यभिचारियों और नशेबाजों के विषय में नित्य ही देखने में आता है कि वे अपने बुरे व्यसनों को त्यागने के लिए दिन में छह-छह बार कसमें खाते हैं और छह-छह बार ही उन्हें तोड़ते हैं। हमारी समझ में तो अगर कसम खिलाने की अपेक्षा उनके हृदय में जमकर उससे उनको पूरी-पूरी ग्लानि हो जाय और साथ ही कई दिन तक उस आदत के छुड़ाने का उनको अभ्यास भी कराया जाय, तो वह बुरी आदत छूट सकती है, नहीं तो केवल कसम खिलाने से कुछ नहीं होगा बल्कि उससे और भी अधिक ढीटपन आ जाता है। इसके सिवा दुनिया में हजारों लाखों ऐसी बातें हैं कि जिनसे बचने की मनुष्य को जरूरत पड़ती है। ऐसी हालत में वह बेचारा किस-किसके त्याग की कसम खाय और किस किसकी याद रखकर उसे निभावे। अतएव मनुष्य को सदैव अपनी विवेशशक्ति से काम लेना चाहिए कि जिससे वह सदैव सब प्रकार की बुराइयों से बचता रहे। इसके अतिरिक्त बहुत सी बातें ऐसी हैं जो किसी समय किसी अवस्था और किसी अवसर पर बुरी होती हैं, और किसी समय, किसी अवस्था और किसी अवसर पर अच्छी। इस कारण कसम खाने से कैसे काम चल सकता है; यही नहीं, वरन् ऐसा करने से मनुष्य की विचारशक्ति भी अपना काम छोड़कर शिथिल और कमजोर बन जाती हैं।

परन्तु इन नशों के विषय में सबसे बड़ी कठिनाई तो यह आ पड़ी है कि हमारे देश के अध्यात्मरस के रसिक योगाभ्यासी और आत्मध्यानी साधु-संत बहुत करके इन नशों को ही मोक्ष जाने की सबसे उत्तम सवारी समझते हैं और इसी कारण वे दिन भर भंग पीने और गांजे या चरस की दमें उड़ाने में ही लगे रहते हैं। नशा करने के सिवा वे अपना और कोई काम ही नहीं समझते हैं। नशे की घुमेर से दिमाग में चक्कर आते रहने और घर आसमान सब कुछ घूमता हुआ नजर आने से ये अन्तर्यामी और महाज्ञानी लोग यही समझता है कि हम बहुत तेजी के साथ मोक्ष की तरफ उड़े जा रहे हैं और एक-एक क्षण में हजारों मील का सफर तय कर रहे हैं; यह आकाश और धरती हमको ऐसी घूमती हुई नजर आती है जैसे कि रेल में बैठने से आपसपास की धरती और वृक्ष घूमते हुए दिखाई देते हैं। यही कारण है कि गृहस्थ लोग भी इन नशेबाज फकीरों को पहुँचा हुआ समझते हैं, उनसे भूत-भविष्यत् की बातें पूछते और उनके वचनों को पत्थर की लकीर समझते हैं। यही नहीं, वे उनकी शक्ति को ईश्वर या प्रकृति की शक्ति से भी अधिक मानकर उनसे ईश्वर या प्रकृति के विरुद्ध काम करा लेने की आशा रखते हैं और इसी लालच से उन्हें नशे की चीजें भेंट किया करते हैं।

ये परोपकारी साधु सन्त इन मोक्षदायक नशों को अकेला ही सेवन करके स्वार्थी नहीं बनना चाहते, बल्कि इनके उत्तम-उत्तम गुण बतलाकर, बड़ी-बड़ी महिमायें गाकर, बड़े आग्रह के साथ अपने

श्रद्धालुओं को भी चखाते हैं और धीरे-धीरे उनको भी नशों का अभ्यास कराके मोक्ष पथ पर ले जाते हैं।

इन मोक्षमार्गी साधुओं की देखादेखी गृहस्थों के धर्मगुरु [illegible] लोग भी शायद इसी भय से नित्य भंग का लोटा चढ़ाना [illegible] है कि नशा नहीं करेंगे तो मोक्ष तो क्या शायद स्वर्ग में भी घुसने के अधिकारी नहीं रहेंगे। इसके सिवा वे भंग को अपने महादेव पर भी चढ़ाते हैं और ऐसा करके मानो वे इस बात का डंका बजाते हैं कि जो कोई इस नशे को बुरा कहेगा वह मानो देवता की प्यारी वस्तु का अपमान करेगा और इस प्रकार देवता का कोप-भाजन बनकर अपना ही सर्वनाश कर लेगा। इसके सिवा अध्यात्मचर्चा के केन्द्रस्थान और मोक्षमार्ग के एकमात्र अधिकारी इस परम पवित्र भारतवर्ष में ऐसे देवता भी निवास करते हैं जो शराब से ही खुश होते हैं और इसलिए उन पर खूब ही शराब चढ़ती है और उनके पुजारियों को वह कुछ भी नशा नहीं करती है। यही कारण है कि वे उसे पानी की तरह और भीतर के कपाट खोलकर भूत-भविष्यत् की सब बातें बतलाने लग जाते हैं।

पाश्चात्य देश निवासी यूरोपियन आदि जड़वादी तो शराब के सिवा और कोई दूसरा नशा ही नहीं जानते हैं। वे शराब भी केवल इसीलिए पीते हैं कि उनके अत्यन्त ठंडे देशों में जहाँ बारहों महीना बर्फ जमा करती है और ठंड के कारण हाथ पैर हिलाना भारी हो जाता है-यह शराब बदन में गरमी लाती, खून के प्रवाह को तेज करती और मनुष्य के उत्साह को बढ़ाकर उसे कार्यक्षम बनाती है। परन्तु अध्यात्मरस के रसिक भारतवासियों ने इस विषय में उनसे विशेष शोध की है। ये कहते हैं कि हिन्दुतान जैसे अत्यन्त गरम देश में इन नशों के पीने से मनुष्य को बहुत दूर की सूझने लगती है और उसकी आत्मा पवित्र होकर शीघ्र ही परमात्म पद को पा लेती है। इसीलिए भारतवर्ष के अध्यात्मवादियों ने अपने ज्ञानचक्षुओं से नशे की बीसों चीजें ढूंढ़ निकाली हैं, जिनके द्वारा वे शीघ्र ही मोक्षमार्ग को तय कर लेते हैं और वहाँ पहुँचकर शीघ्र ही सत् चित् आनन्द में लय हो जाते हैं-अनन्तकाल तक परमानन्द में मग्न रहते हैं।

इसके अतिरिक्त पाश्चात्य देशों के जड़वादियों ने जड़ पदार्थों के गुणों की खोज में नशे को हानिकारक जानकर उसे त्यागना शुरू कर दिया है और अमेरिका जैसे ठंडे देश में भी शराब का पीना राजाज्ञा द्वारा बन्द कर दिया गया है। परन्तु वे सब म्लेच्छ देश हैं, इस कारण इन अध्यात्मवादियों के कथनानुसार वहाँ इस प्रकार के जितने उलटे कार्य हों-सब थोड़े हैं। परन्तु इस परम पावन भारत देश में ऐसा नहीं हो सकता है, बल्कि यहाँ अन्य सब नशों के साथ-साथ शराब का पीना भी हद से ज्यादा बढ़ता जाता है। पचास वर्ष पहले जिस स्थान पर शराब की बिक्री का ठेका सौ रुपये में होता था वहाँ अब वह कई-कई हजार रुपयों में होने लगा है और साल दर साल बढ़ता ही चला जाता है हरिद्वार आदि तीर्थों पर इस शराब की बिक्री इतनी अधिक होने लगी है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। इसका कारण इसके सिवा और क्या हो सकता है कि शराब जैसे उत्तम पदार्थ के गुणों को पश्चिम के जड़वादी जरा भी नहीं पहिचानते हैं, इसीलिए वे इसको अपनी अज्ञानता के कारण त्यागने लगे हैं, परन्तु भारतवर्ष के अध्यात्मवादी शराब के आध्यात्मिक गुणों को भलीभाँति जानते हैं और इसीलिए वे रातदिन इसका

प्रचार अधिकाधिक बढ़ाते चले जा रहे हैं।

यह अध्यात्मिक भारत नशैली चीजों की खोज में इतना निपुण हो गया है कि पश्चिम देशवासियों ने अपनी जड़बुद्धि से जो 'कोकेन' नामी एक ऐसी औषधि निकाली है जिसके लगाते ही शरीर शून्य हो जाता है और इस कारण चीरफाड़ में आसानी हो जाती है, उसमें भी उसने अपने ज्ञानचक्षु से नशे का गुण पहिचान लिया है और उसे नशे के रूप में इस्तैमाल करना प्रारम्भ कर दिया है। यद्यपि गवर्नमेण्ट ने उसे बहुत हानिकारक और विषाक्त समझकर उसका खाना अपराध ठहराया है और जिसके पास एक रत्ती भर भी कोकेन मिल जाती है उसे दंड दिया जाता है, परन्तु अध्यात्मवादी भारत ने इसका जो गुण पहिचाना है वह जड़वादी पश्चिम क्या जाने! इसीलिए भारतवासी अब भी अनेक गुप्त रीतियों से इसे मँगाते और लाखों करोड़ों रुपयों की (कोकेन) खा जाते हैं।

ऐसी दशा में बहुत कुछ सोच विचार करने पर भी अब तक हमारी समझ में यह नहीं आया कि हिन्दुस्तान में नशे को बंद करने का क्या उपाय किया जाय सिवाय इसके कि जो लोग नशे को बुरा समझते हैं वे ऐसे अध्यात्मवादियों से दूर रहकर स्वतः नशा करना छोड़ दें और उसकी बुराइयों को जोरशोर के साथ लोगों पर प्रकट करें।

तमाखू खाना, पीना, सूंघना आदि छोटे-छोटे नशे यद्यपि मनुष्य का साक्षात् पागल नहीं बनाते हैं तथापि वे शरीर को बहुत अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। इसके सिवा इन छोटे नशों से भी लाभ तो कुछ होता नहीं है उल्टे आदत पड़ जाने पर उने बहुत दुःख उठाना पड़ता है। इसलिए छोटा बड़ा कोई भी नशा नहीं करना चाहिए और किसी खास वस्तु की आदत न डालकर स्वच्छन्दता का उपभोग करना चाहिए।

नशे से दूसरे दर्जे पर मनुष्य के गले पड़ जाने वाले वे खेल हैं जिनमें हार-जीत होती है या मान कषाय भड़कता है। इन खेलों में भी वे खेल अधिक रुचिकर होते हैं और उनकी आदत भी जल्दी पड़ जाती है। जिनमें मेहनत कम करना पड़ती है और बैठे-बैठे ही हार-जीत हो जाती है। कुश्ती, कबड्डी, गेंदबल्ला, घुड़दौड़ आदि एसे कई प्रकार के खेल हैं कि जिनमें शारीरिक मेहनत भी खूब होती है और हार-जीत भी हो जाती है। यदि मनुष्य इन खेलों को ऐसी सावधानी के साथ खेले कि जिससे उसके शरीर की मेहनत तो हो जाया करे परन्तु उनकी अधिक लत न पड़ने पाय, तो ये खेल उसके लिए बहुत लाभकारी हैं। परन्तु मनुष्य यदि इन खेलों को इतना अधिक खेलने लगे कि जिससे उसके जरूरी कामों में विघ्न पड़ने लगें तो ये वर्जिश के खेल भी हानिकारक और त्याज्य हो जाते हैं। रहे वे खेल जिनमें हार-जीत तो होती है परन्तु शरीर को कुछ भी मेहनत नहीं करनी पड़ती। जैसे कि शतरंज, गंजफा, ताश, चौपड़ आदि। सो ये खेल कार्यकारी तो कुछ भी नहीं होते, केवल दिल बहलाने के लिए खेले जाते हैं। यदि मनुष्य इनके बजाय अपने खाली समय को नई नई पुस्तकें पढ़ने , नई-नई बातें सीखने या नई-नई कारीगरी के काम करने में लगावे तो उसे अनेक प्रकार के हुनर आ जायँ और उसकी विशेष उन्नति हो जाय। इन कामों के द्वारा उसे समय बिताने की चिन्ता न करना पड़े और काम के साथ-साथ उसका दिल बहलाव भी हो जाया करे।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

ब्रह्मचर्य–विज्ञान

लेखकः–जगतनारायणदेव शर्मा

दो आदर्श ब्रह्मचारी

अब हम इनकी दृढ़ प्रतिज्ञा तथा पराक्रम–शीलता का परिचय इन्हीं के कहे हुये वाक्यों से कराते हैं–

श्रीजानकी को खोजते हुये वानर लोग समुद्र–तीर पर पहुँचे। सबों ने समुद्र लाँघने के लिये अपने–अपने बल का वर्णन किया। जाम्बवन्त ने देखा कि बिना हनुमान के काम न चलेगा। अतः उन्होंने उन्हें उत्कर्ष–वचनों द्वारा उत्साहित किया। इस पर हनुमान ने उत्तेजित होकर वानरी–सेना को इस प्रकार सन्तुष्ट किया–

यथा राघव–निर्मुक्तः, शरः श्वसन– विक्रमः।
गच्छेत्तद्वद्गमिष्यामि, लंका रावणपालिताम्।।
नहि द्रक्ष्यामि यदितां, लंकायां जनकात्मजाम्।
अनेनैव हि वेगेन, गमिष्यामि सुरालयम्।।
यदिवात्रिदिवे सीतां, न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः।
बद्ध्वा राक्षस–राजान मानयिष्यामि रावणम्।।
सर्वथा कृत कार्योऽह मेष्यामि सह सीतया।
आनयिष्यामि वालंका, समुत्पाटय सरावणम्।।

–(वाल्मीकि रामायण)

जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र का चलाया हुआ बाण सन–सन करता हुआ जाता है, उसी भाँति मैं रावण के द्वारा रक्षा की गई लंकापुरी में जाऊँगा। यदि मैं उस लंका में जानकी को न देखूँगा, तो उसी वेग से स्वर्ग में चला जाऊँगा। यदि मैं इतना परिश्रम करने पर भी त्रिलोक में सीता को न पा सकूँगा, तो मैं राक्षसों के राजा रावण को बाँधकर यहाँ ले आऊँगा, या तो मैं कृतकार्य होकर सीता के साथ आऊँगा, या लंका को भली भाँति नष्ट–भ्रष्ट करके रावण को साथ पकड़ ले आऊँगा।

पाठकों ने एक आदर्श ब्रह्मचारी का परिचय पा लिया। इनकी वाणी में कैसा तेज है? अब हम दूसरे का परिचय कराते हैं।

दूसरे ब्रह्मचारी का नाम भीष्म पितामह है। महाभारत के चरित–नायकों में ये प्रधान माने जाते हैं। इनका परम स्वार्थ–त्याग उच्च–धर्म–नीतिज्ञता, अद्भुत पराक्रम, शस्त्रास्त्र चलाने में निपुणता,

युद्ध-कौशल, विपुल पाण्डित्य तथा उदार चरित्र प्रायः सब पर विख्यात है।

ये भी बाल-ब्रह्मचारी थे। पहले इनका नाम 'देवव्रत' था, पर जब से इन्होंने अपने पिता के विवाह के लिये ब्रह्मचर्य की कठिन प्रतिज्ञा की, तब से लोग इन्हें 'भीष्म' कहने लगे।

इस महापुरुष के उन्नत व्यक्तित्व के सम्बन्ध में एक बहुत प्रचलित उत्तम श्लोक है, उसे हम यहाँ देते हैं-

भीष्मः सर्व गुणोपतेः, ब्रह्मचारी दृढ़व्रतः।
लोक-विश्रुत कीर्तिश्च, सद्धर्माभून्महामतिः।। (सूक्ति)

भीष्म सर्व गुण-सम्पन्न, ब्रह्मचारी, दृढ़वती, धर्म के पालन करनेवाले, बुद्धिमान और संसार के बड़े यशस्वी पुरुष थे।

भीष्म की विमाता ने वंश-विच्छेद होता हुआ देखकर, इनको विवाह कर लेने की आज्ञा दी। महर्षि व्यास ने भी ब्रह्मचर्य छोड़कर, विवाह करने के लिये, बहुत प्रकार से समझाया। बहुत से लोगों ने इन्हें अपनी प्रतिज्ञा छोड़ने के लिये आग्रह किया, पर इस मनस्वी ने अपना प्रण नहीं छोड़ा। जब सब लोग समझाकर हार गये, तब इन्होंने अन्त में अपने विचार की अटलता जिन ओजस्वी भावों में प्रकट किया, उन्हें यहाँ उद्धृत करते हैं-

त्यजेच्च पृथ्वी गन्धमापश्चरस मात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं, वायुःस्पर्शगुणंत्यजेत्।।
विक्रमं वृत्रहाजह्याद्धर्मं जह्याच्च धर्मराट्।
नत्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं, व्ययसेयं कथंचन।।

-(महाभारत)

चाहे भूमि अपना गुण गन्ध छोड़ दे। जल अपना तरलत्व त्याग दे-सूर्य अपना तेज छोड़ दे-वायु अपना स्पर्श त्याग दे, इन्द्र पराक्रम रहित हो जाय, और धर्मराज धर्म से विमुख होकर रहें, पर मैं जिस ब्रह्मचर्यरूपी सत्य को, धारण कर चुका हूँ, उसे कदापि नहीं छोड़ सकता। इससे बढ़कर और क्या एक सत्यशील ब्रह्मचारी कह सकता है।

ऊपर के दो आदर्श ब्रह्मचारियों के चरित्र से परम सुख देने वाले 'ब्रह्मचर्य' की महिमा भली भाँति प्रकट होती है। उनके समान यदि एक भी ब्रह्मचारी इस देश में हो जाय, तो उद्धार होने में रंच-मात्र सन्देह नहीं।

अखण्ड ब्रह्मचर्य के पालन करने से ही हनुमान की घर-घर मूर्तियाँ स्थापित कर, पूजन होता है। इसी व्रत में सफल होने के कारण श्रीसीताजी के स्नेह-पात्र हुये और उन्हें यह आशीर्वाद मिला-

अजर-अमर गुणनिधि सुत होहू।
करहिं सदा रघुनायक छोहू।।

–(रामचरित मानस)

इसी सर्वोत्तम गुण के कारण श्रीरामचन्द्र जी श्रीभरत के समान प्रिय मानते रहे। और इसी के एक मात्र कारण से वे 'महावीर' पदवी से विभूषित हुये।

अचल ब्रह्मचर्य के कारण ही भीष्म का नाम तर्पण में लिया जाता है।

इसी के कारण वे इच्छा मरणी हुये और महाभारत के रणक्षेत्र में कोई भी उनका सामना न कर सका।

अतएव महत्व की इच्छा रखने वाले पुरुषों को चाहिये कि इन दोनों सत्पुरुषों का अनुकरण कर, अपने को वैसा ही बनावें।

ब्रह्मचर्य के दो बड़े आचार्य

"आचार्यो ब्रह्मचर्येण, ब्रह्मचारिणमिच्छते।" –(अथर्ववेद)

आचार्य अपने ब्रह्मचर्य के बल से ब्रह्मचारियों का हित करता है। अर्थात् योग्य बनाता है।

'आचार्यः परमः पिता।' –(सूक्ति)

धार्मिक दृष्टि से आचार्य भी विद्यार्थी का परम पिता होता है।

प्राचीन समय में ब्रह्मचर्य के अनेक आचार्य हो गये हैं। देव लोग तो ब्रह्मचर्य–व्रत के लिये प्रधान ही माने जाते थे, पर असुर लोग भी विद्वानों की कृपा से, इस महाव्रत का माहात्म्य जानते थे। आचार्यों का यही काम था कि वे स्वयं ब्रह्मचर्य के लिये दृढ़ संकल्प रहते थे और अपने शिष्यों को भी इसका पाठ पढ़ा देते थे। इनमें महादेव भगवान शंकर और दानव–गुरु शुक्र बहुत बड़े थे। अतएव हम इन दोनों के विषय में पृथक्–पृथक् वर्णन करते हैं।

भगवान शंकर परम योगी थे। ये 'ब्रह्मचर्य' के अधिष्ठाता और शिक्षक थे। सुर और असुर इनकी प्रसन्नता के लिये, और वर–दान प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मचर्य–व्रत का पालन करते, और वांछित वर पाते थे।

एक बार की बात है कि ये अपने ब्रह्मचर्य–व्रत की दृढ़ता के लिये तपस्या कर रहे थे। इन्द्र ने कामदेव को इनके पास तपोभंग करने के लिये भेजा। वे भी कैलाश में पहुँच कर, एक वृक्ष की ओट से अपना बाण, शंकर पर चलाने लगे। उनके मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ। वे अपने योग–बल से इसका कारण समझ गये। उन्हें कामदेव के कपट–व्यवहार पर अत्यन्त क्रोध हुआ, और उन्होंने अपना प्रलयंकारी तृतीय नेत्र खोल दिया। इस घटना का उल्लेख महाकवि कालिदास ने बड़े ही उत्कर्ष–वर्द्धक प्रकार से 'कुमार–सम्भव' में किया है। उसे हम यहाँ देते हैं–

क्रोधं प्रभो! संहर संहरेति।
यावद् गिरा खे मरुतां चरन्ति।।
तावत्स वह्नि र्भव–नेत्र–जन्मा।
भस्मावशेषं मदन चकार।।

हे प्रभो! अपने क्रोध को शान्त कीजिये! शान्त कीजिये! जब तक, ये शब्द आकाश-पथ में गूँजे, तब तक तो शिव के उग्र नेत्र से उत्पन्न-उस अग्नि ने, कामदेव को जला कर भस्म कर डाला और हाहाकार मच गया। यह तो हुई एक काव्यमयी पौराणिक कथा। अब इसका आध्यात्मिक रहस्य भी सुनिये! यह जानने के योग्य है-

मनुष्य का शरीर ही कैलाश है। उसमें योगयुक्त रहने वाला वीर्यमय जीव ही 'शंकर' है। मनो-विकार ही 'कामदेव' है और विवेक ही दोष-नाशक 'तीसरा नेत्र'। ब्रह्मचर्य की अवस्था में मनो-विकार उसका अनुष्ठान भंग करना चाहता है, परन्तु जब वह अपनी विवेक-दृष्टि से देखता है, तो यह उसकी काम-वासना तत्क्षण नष्ट हो जाती है।

प्राचीन समय में शुक्राचार्य नाम के एक असुरों के गुरु थे। वे वीर्य-रक्षा के लिये अनेक उपाय बताते थे। एक बार उनकी शिक्षाओं को ग्रहण कर दानव लोग बड़े बलिष्ठ हो गये थे। अब तो उनसे देव लोग भी भय-भीत होने लगे। कहा जाता है कि इन आचार्य के पास 'संजीवनी' नाम की एक विद्या थी, जिससे वे मृतक को भी जीवित कर सकते थे। इसीलिये देवों ने अपने 'कच' नामक एक व्यक्ति को उनके पास यह अमोघ ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेजा। शुक्राचार्य के प्रताप से इनको भी वह विद्या आ गई। यह संजीवनी-विद्या क्या था, जिसे कि केवल कच ने बड़े परिश्रम से प्राप्त किया? वीर्य-रक्षा की प्रकाण्ड प्रणाली, जिन पर चलने से लोग मृतक होने से बच जाते थे। शुक्राचार्य ने एक बार कच को मरने से बचा भी लिया था। वह आख्यान आगे दिया जायगा।

अब पाठक काम-नाशक 'तृतीय नेत्र' और 'संजीवनी-विद्या' का अद्‌भुत भेद समझ गये होंगे।

अभ्यास और वैराग्य नाम के दो नेत्र हैं। 'तृतीय नेत्र' जो कि मस्तिष्क में है, वह आत्मज्ञान है। उसके खुलने से काम का निश्चय का नाश हो जाता है। शिव के पास यही नेत्र था। इसीलिये उन्होंने कामदेव को जलाकर क्षार कर दिया। यदि तुम भी अपने मनोविकारों को जलाकर, अपने को शंकर बनाना चाहते हो, तो इसी नेत्र को प्राप्त करने का उद्योग करो।

वीर्य की रक्षा करने वाली नियमावली का नाम 'संजीवनी-विद्या' है। जो इसे नहीं जानता, वह मृतक हो जाता है। अर्थात् अपने को विकारों से सुरक्षित नहीं रख सकता। वीर्य-नाश का ही नाम मृत्यु है, जो इस विद्या को नहीं जानता, वह अपने को इस मृत्यु से बचा नहीं सकता। यदि तुम इस शुक्र-संरक्षण-विधि को जानते हो, और इसका अभ्यास भी है, तो तुम स्वयं तो सुरक्षित हुये हो, परन्तु औरों को भी तुम मृतकत्व से जीवित कर सकते हो। यह तुम्हारे लिये सब से सुख की बात होगी।

ब्रह्मचारियों को चाहिये कि इन दोनों आचार्यों को अनुकरण करें। इन दोनों ने ब्रह्मचर्य-रक्षा के लिये, जो योग्यतायें प्राप्त की थीं, वे सब के लिये और सब कालों में, मनुष्य का हित कर सकती हैं। इन आचार्यों को अपना आचार्य मानकर, साधना में तत्पर हो जायँ।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

"ऋषिवर देव दयानन्द की राष्ट्र को देन"

लेखकः खुशहालचन्द्र आर्य, 180, महात्मा गांधी रोड, (दो तल्ला) कोलकाता मोबा. 9830135794

6– आर्य बाहर से नहीं आये:– जब देश अंग्रेजों के अधीन हुआ तब हिन्दुओं के स्वाभिमान को नष्ट करने के लिए भारत के इतिहासकारों को कुछ लोभ लालच देकर उनसे भारत के इतिहास में कुछ गलत बातें लिखवा दी। पहली बात तो यह लिखवाई कि आर्य भी ईरान से या मध्य एशिया से आये आदि बाहर से आये थे। दूसरी बात यह लिखवाई कि भारत के ऋषि–मुनि जो वैदिक काल में हुए थे, वे भी गो–मांस खाते थे आदि। जिससे हिन्दुओं का गौरव तो घटा ही साथ ही उनका विशेष महत्व भी समाप्त हो गया। इस स्थिति को समझकर महर्षि जी ने वेदों के आधार पर कहा कि ईश्वर ने सृष्टि के आदि में तिब्बत के पठार पर कृत्रिम गर्भाशय बनाकर युवा अवस्था में अनेक नर–नारी उत्पन्न किये जिससे आगे की सृष्टि चले। वहां पर आर्य व अनार्य दोनों थे हजारों वर्ष बाद उनका परस्पर झगड़ा होने से तिब्बत के पठार से आर्य नीचे आ गये। जिस भाग में आर्य बसे, उन्होंने उस प्रदेश को आर्यावर्त्त कहना आरम्भ कर दिया। और स्वयं को आर्य कहकर रहने लगे। वहीं आर्य कालान्तर में हिन्दू बने। इस प्रकार हिन्दू यानि आर्य और आर्यवर्त यानि हिन्दुस्तान के आदि निवासी हैं, न कि बाहर से आये हैं। महर्षि ने एक बात और कही यदि आर्य बाहर से आये हैं तो आर्यों के आने से पहले इस देश का क्या नाम था, हमें इतिहास में लिखा दिखाओ। इस बात पर सबकी बोली बन्द हो गई। महर्षि के बाद स्वामी सम्पूर्णानन्द तथा अन्य कई इतिहासकारों ने इस बात को माना।

7– गुरूकुल शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया:– वैदिक काल में केवल भारत में ही नहीं पूरे विश्व में गुरूकुल शिक्षा का प्रचलन था। उनसे जो ब्रह्मचारी निकलते थे, वे पूर्ण चरित्रवान, ईश्वर विश्वासी, विद्वान्, साहसी, शक्तिवान, धैर्यवान तथा समाज धर्म व राष्ट्र के रक्षक होते थे। जिससे केवल एक राष्ट्र ही नहीं बल्कि मानव–मात्र वेदानुकुल चलकर मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी बनते थे। जब से अंग्रेज भारत में आये तब से अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार होना आरम्भ हो गया और देश पश्चिमी सभ्यता की ओर जाने लगा। महर्षि ने यह स्थिति देखकर गुरूकुल शिक्षा का प्रचार किया और उनके बाद उनके शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी ओमानन्द, स्वामी धर्मानन्द आदि ने गुरूकुल शिक्षा पद्धति का बहुत प्रचार किया। आज तो देश में हजारों की संख्या में गुरूकुल खुले हुए हैं जिनसे अच्छी उम्मीद रखी जा रही है।

8– देश के महान् पुरुषों के चरित्र को संवारा:– देश के महान् पुरुष श्रीकृष्ण, हनुमान, बाली, सुग्रीव आदि के बारे में काफी गलत बातें जोड़ रखीं थी। सबसे अधिक तो भगवान् श्री कृष्ण जैसे महान् योगी को एक चरित्रहीन, नचनवा, लड़कियों के पीछे घूमने वाला, अनेकों पत्नियों को रखने वाला बना रखा

था। महर्षि ने उसको एक महान् योगी, एक पत्निव्रत, एक महान् योद्धा बतलाकर उनके चरित्र को केवल संवारा ही नहीं बल्कि यह लिखकर कि श्रीकृष्ण ने जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त कोई गलत काम किया ही नहीं। उनके जीवन को और अधिक उज्ज्वल बना दिया। हनुमान, बाली, सुग्रीव आदि को बन्दर बना रखा था। उनकी एक वानर जाति बतलाकर उनको मनुष्य ही बतलाया। इस प्रकार उनके सही स्वरूप को प्रकट किया।

9– शुद्धि प्रथा का प्रचलन किया:– हमारे गरीब, अनपढ़ व लाचार हिन्दू वनवासी भाई–बहिनें जिन्होंने भय, लोभ, लालच से धर्म परिवर्तन कर लिया था। उनको पुनः हिन्दू बनाया। और हिन्दुओं को संजीवनी बूटी पिलाई।

महर्षि देव दयानन्द द्वारा संचालित इन सब कार्यों से देश में नव–जागृति आई जिससे भारत उन्नत और समृद्धि की ओर बढ़ रहा है। वह दिन दूर नहीं जब हमारा देश पुनः 'विश्व गुरू' व 'सोने की चिड़िया' कहलाने लगेगा। ❁❁❁

तपोभूमि मासिक के ग्राहक महानुभावों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन–जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/– एक सौ पचास रूपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/– एक हजार पाँच सौ रूपये भेजकर पत्रिका का लाभ उठायें।

हम आपको वार्षिक विशेषांक सहित पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार–प्रसार भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

–धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या–

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F SC Code- I O B A 0001441 ***'सत्य प्रकाशन'*** *खाता संख्या– 144101000002341*

फिर मन बता कैसे लगे

(1)

चिन्ता हजारों लग रहीं, सुत–दार की, परिवार की।
तृष्णा कभी घटती नहीं, है भूख 'दो चखा' चार की।।
पीछे लगे हैं चोर जो, कहलाय हैं साथी सगे।
श्रीराम, शिव या कृष्ण में, फिर मन बता कैसे लगे?

(2)

अच्छा लगे पीना तुझे, अच्छा लगे खाना तुझे।
अच्छा लगे है नाचना, अच्छा लगे गाना तुझे।।
दुस्संग में दौड़े सदा, सत्संग से कोसों भगे।
निस्संग, निर्मल देव में, फिर मन बता कैसे लगे?

(3)

माया नटी ने है रचा, नाटक अनोखा यह जगत्।
जो देखता फंस जाय सोई, भूल जाता सत असत्।।
देखे हजारों चित्र निशदिन, रंग लाखों से रंगे।
वे रंग में रूप में, फिर मन बता कैसे लगे?

(4)

बोला युधिष्ठिर झूठ आधा, रथ उसी क्षण गिर गया।
अपकीर्ति फैली विश्व में, मन भी तुरत मैला भया।।
बोले सदा ही झूठ जो, दिन रात लोगों को ठगे।
सच्चे अमल शिव शुद्ध में, फिर मन बता कैसे लगे?

(5)

थोथे पढ़े पोथे सदा, पढ़ता नहीं सद्ग्रन्थ है।
करता सदा तप तामसी, ना जानता सत्पन्थ है।।
पीता नहीं है भक्तिरस, ना ज्ञान गुड़ में ही पगे।
अनुपम, निरामय ब्रह्म में, फिर मन बता कैसे लगे?

(6)

व्यवहार सच्चा जानता, क्षर देह अक्षर मानता।
संसार में सुख ढूंढ़ता, सुख–रूप शिव ना जानता।।
विश्वेश में तो सो रहा है, विश्व माहीं है जगे।
निष्फल निरंजन तत्व में, फिर मन बता कैसे लगे?

(7)

हैं देह तीनों रोग मय, तीनों अवस्थायें स्वपन।
विश्वादि तीनों कल्पना, आत्मा अमर चैतन्यधन।।
ऐसा तुझे हो ज्ञान तब ही, भाग्य तब सोया जगे।
पावन–परम शिवशान्त में, फिर मन नहीं कैसे लगे?

(8)

बाहर नहीं है सुख जरा, सुख–सिन्धु भीतर है भरा।
नर मूढ़ बाहर खोजता, ज्यों हरिण कस्तूरी भरा।।
सुख–सिन्धु यदि मन देखले, तो फिर नहीं बाहर लगे।
भोला ! चलाये से 'कभी भी ना चले' ऐसा लगे।।

❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

राजार्षि पुरुषोत्तमदास टंडन	1 अगस्त
गोस्वामी तुलसीदास	10 अगस्त
अरविन्द घोष	15 अगस्त
राजगुरू	24 अगस्त
श्रीकृष्ण जन्म दिवस	25 अगस्त

भारत छोड़ो आन्दोलन दिवस (1942)	9 अगस्त
अखण्ड भारत दिवस	14 अगस्त
स्वतंत्रता दिवस	15 अगस्त
रक्षा बन्धन	18 अगस्त
राष्ट्रीय खेल दिवस	29 अगस्त

महापुरुषों की पुण्यतिथि

लोकमान्य तिलक	1 अगस्त
बाल गंगाधर तिलक	1 अगस्त
सुरेन्द्रनाथ बनर्जी	6 अगस्त
रविन्द्रनाथ टैगोर	8 अगस्त
खुदीराम बोस	11 अगस्त
मेडम भीकाजी कामा	13 अगस्त
वीर गुलाबसिंह	14 अगस्त
मदनलाल धींगरा	17 अगस्त
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	18 अगस्त

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

जरा वर्ग

लेखकः स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

अपने प्रिय शिष्य आनन्द के साथ भगवान बुद्धदेव एक दिन बैठे बातें कर रहे थे। इतने में एक नवयुवक भिक्षु एक वृद्ध मनुष्य का हाथ पकड़े हुये पूज्य गुरुदेव जी के पास आया। वह वृद्ध पुरुष अत्यन्त दुःखी था और बहुत दूर से भगवान के दर्शनार्थ आया था। उसके मन को शांत करने के लिये भगवान ने उसे अपनी मधुर वाणी में यह अमृतमय वचन सुनाये–

"यह संसार जल रहा है, इसमें हँसी और खुशी के लिये स्थान कहां? ऐ संसारीं लोगों तुम अंधकार से आच्छादित हो, क्यों तुम प्रकाश की तलाश नहीं करते?

एक दूसरे से मिले हुये घावों से पूर्ण, बीमार, चिंताओं में डूबे हुये, दुर्बल और शक्तिहीन, कपड़ों से ढके हुये, इस मांस के पिण्ड को देखो।

यह शरीर नाशवान, व्याधिपूर्ण और अनित्य है। यह बुराइयों का ढेर छिन्न भिन्न होने वाला है, इसका परिणाम मौत है।

पतझड़ में फेंकी हुई लौकी की तरह इन सफेद हड्डियों के देखने में क्या खुशी मालुम होती है?

हड्डियों का ढांचा बन जाने के बाद यह मांस और रुधिर से ढांप दिया जाता है और उसमें बुढ़ापा और मृत्यु, अभिमान और कपट निवास करते हैं।

'बादशाहों के चमकीले रथ नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार शरीर भी नाश के निकट पहुँचता है लेकिन साधु पुरुषों के सद्गुण कभी भी विनाश के निकट नहीं पहुँचते', इस प्रकार एक सत्पुरुष दूसरे सत्पुरुष से कहता है।

जिस मनुष्य ने कुछ भी शिक्षा ग्रहण नहीं की वह बैल की तरह बूढ़ा हो जाता है उसका मांस तो बढ़ता है लेकिन ज्ञान नहीं।

इस मन्दिर के बनाने वाले की तलाश में उस समय तक मुझे अनेक जन्मों के चक्र में घूमना पड़ेगा जब तक कि मुझे उसका पता न लग जाय मुझे लगातार कई जन्मों के चक्र में गुजरना होगा और बार–बार का जन्म लेना कष्टपूर्ण है। लेकिन ऐ इस मन्दिर के बनाने वाले! तुझे मैंने देख लिया है अब आगे को तू इस मन्दिर को नहीं बनाने पावेगा।

तेरे सब खम्बे टूट गये हैं, तेरा केन्द्रस्थ स्तम्भ दो टूंक हो गया है; मन अनादि निर्वाण पद के निकट पहुंच कर सब प्रकार की वासनाओं से मुक्त हो चुका है।

जिन्होंने अपने जीवन की उचित व्यवस्था नहीं रक्खी और जिन्होंने अपनी जवानी में धर्मरूपी

–(शेष पृष्ठ सं.23 पर)

जीना है तो मित्रता कीजिए

मेरे एक मित्र हैं। उनकी अच्छी से अच्छी मित्रता आवेश और नासमझी के कारण समाप्त हो जाती है। मैं उनसे एक ही बात कहना चाहता हूँ, जो बापू ने कही थी–मित्र के खोट को निभाना ही मैत्री है।

लेकिन क्या वे मेरी बात सुनेंगे? हां, सुनेंगे! प्रथम तो यह बात मैं उनसे तब नहीं कहूँगा जब वे उत्तेजित होंगे। दूसरे मैं पहले उनके द्वारा कही गयी किसी बात की महानता, सत्यता या उपयोगिता का जिक्र करूँगा। तीसरे अपनी बात को मैं इतनी मनोरंजक बनाकर कहूँगा कि मुझे विश्वास है वे मेरी बात सुन लेंगे।

सुकरात ने कहा– दोस्त बनाने में कभी जल्दबाजी मत करो और दोस्ती होने के बाद उसे हमेशा बनाये रखने की कोशिश करो।

लेकिन इसके लिये बहुत कुछ करना पड़ता है। क्रोध पर नियन्त्रण, मित्र के गुणों की प्रशंसा, निःस्वार्थ प्रेम, सहानुभूति, सहनशीलता, समर्पण आदि।

एक सज्जन मुझसे पहली बार मिले और पहली मुलाकात में ही उन्होंने हवलदारों की तरह कई सवाल दाग दिये। सवाल भी कैसे मुलाहिजा फरमाइये–आप रहते कहाँ हैं? क्या यहीं के रहने वाले हैं? आपका घर का मकान है? आपकी जाति क्या है? आपको तनख्वाह कितनी मिलती है? आपकी शादी कब हुई? मुझे सारा शिष्टाचार भुलाकर उनसे कहना पड़ा? 'आप पूछताछ बहुत अच्छी कर लेते हैं।

आप बहुत ज्यादा तो नहीं बोलते? एकदम से घनिष्टता जताने की कोशिश मत कीजिये। जिस मित्र के रसोईघर में आप चले जा रहे हैं, हो सकता है वह आपको ड्रांइंग–रूम में ही बिठाना चाहता हो।

अच्छे और सच्चे श्रोता बने रहिये। अपने मित्र को अधिक बोलने दीजिए। इससे आपको उसके बारे में अधिक जानने का मौका मिलेगा। इससे आप अपने व्यवहार को उसी के अनुरूप ढाल कर अपनी मित्रता को कायम रख सकते हैं।

छोटी–छोटी बातों को लेकर सम्बन्ध टूट जाते हैं और सम्बन्ध तोड़ने वाला सोचता है कि इसके बिना भी रहा जा सकता है। यह बात गलत तो है ही, हानिप्रद भी है–व्यक्ति और समष्टि दोनों के लिये। ऐसे दृष्टिकोण वाला व्यक्ति धीरे–धीरे अपने समबन्ध चाहे अनचाहे तोड़ता रहेगा और एक दिन वह पायेगा कि उसके साथ कोई नहीं है। कह किसी को अपना नहीं कह सकता। न कोई उसे इन्तजार में आँखें बिछाता है, न कोई उसके दर्द में कराहता। वह निरंकुश और अनुत्तरदायी हो जाता है। किन्तु उसका अकेलापन उसे अन्दर ही अन्दर खाता रहता है।

यह स्थिति बड़ी भयानक है। लोग आपको महत्व देना कम कर देंगे। आप चाहने पर भी किसी के लिये कुछ नहीं कर पायेंगे। आपकी उपस्थिति से लोग ऊबने और खीजने लगेंगे। तटस्थता से उपेक्षा फिर

तिरस्कार और अन्त में घृणा–यह क्रम चलता है। क्या आप चाहते हैं कि लोग आपसे घृणा करें? निःसन्देह आप ऐसा नहीं चाहेंगे। तो मित्र आपको अभी इसी क्षण से सच्चा मित्र बनाने के प्रयत्न शुरू कर देने चाहिए।

अपने मित्र या साथी से निष्ठापूर्वक प्रेम कीजिए। उसकी कठिनाई को अपनी कठिनाई समझ कर उसे दूर करने की कोशिश कीजिए। जिस तरह शायद आपको किसी की सलाह, सहानुभूति, करुणा, स्नेह और वात्सल्य की जरूरत होती है या अपना सुख–दुःख किसी के सामने प्रकट कर देने को जी होता है, उसी तरह आपके मित्र का भी होता है। जब आपकी मित्रता शुरू हुई थी तो आप उसकी बातें सहानुभूति पूर्वक सुनते रहे होंगे। शायद अब आपको शिकायत होती हो कि वह अपना ही रोना रोता रहता है। उसकी घिसी–पिटी बात भी सुन लीजिए, उसके प्रति सहानुभूति दिखाइये। आप पायेंगे कि जो आपने वे मन से दिया है, उससे कई गुना अधिक आपको उदारता पूर्वक दिया जा रहा है। दोस्ती दौलत से नहीं दिल से होती है।

मैंने अपने एक मित्र से एक अन्य मित्र का परिचय कराते हुए कहा, इनसे मिलिए–ये हैं कुमारी .....मेरी मित्र। बाद में पता चला कि मेरी मित्र मुझसे रुष्ट थी। उनकी नाराजगी का कारण–मैंने यह क्यों नहीं कहा कि कालिज की बहुत अच्छी खिलाड़ी हैं, बड़ा अच्छा नृत्य करती हैं, बड़े अच्छे स्वभाव की हैं आदि। मित्रों के गुणों की प्रशंसा मुक्तभाव से करना सीखिये।

जो मित्र बहस पसन्द नहीं करते उनसे बहस मत कीजिए। इससे कोई लाभ नहीं। उनकी बात सुन लीजिए और उन्हें जल्दी से कोई दिलचस्प लतीफा सुना दीजिए। यदि गलती आपकी है तो फौरन मान लीजिए और यदि गलती आपके मित्र की है तो बात को टाल दीजिए। हो सकता है उसको स्वयं समझ आ जाये कि गलती उसकी है।

सच बात कहने से कभी मत डरिये। इससे आपका आत्मिक बल तो बढ़ेगा ही आपको लोग बहुत पसन्द भी करेंगे। लेकिन सच इस तरह से कहिये कि किसी को चोट न लगे।

सच्ची मित्रता और सच्चा प्रेम समर्पण से ही सम्भव है। समर्पण में अधिकार की लिप्सा नहीं होती।

स्नेह, सहानुभूति, करुणा और समर्पण–ये सब गुण आप में हैं, कहीं बाहर से लाना नहीं है। बस अपने भीतर झाँकने भर की देर है। ❁❁❁

पृष्ठ संख्या 21 का शेष–

धन संचय नहीं किया वे मनुष्य मछलियों से खाली झील में रहने वाले बूढ़े बगलों की तरह नाश हो जाते हैं।

वे मनुष्य जिन्होंने अपने जीवन की उचित व्यवस्था नहीं रक्खी और जिन्होंने जवानी में धर्म रूपी धन संचय नहीं किया वे टूटी हुई कमान की तरह अपनी बीती हुई दशा पर आहें भरते हुये पड़े रहते हैं।'' ❁❁❁

बच्चे और अनुशासन

बच्चों में अनुशासन की भावना कैसे भरी जाये, यह प्रश्न सारे राष्ट्र के हित का है। अनुशासित बच्चे ही बड़े होकर सभ्य नागरिक बनते हैं। पर कुछ लोगों को अनुशासन के नाम से ही चिड़ है। इस चिढ़ का कारण अनुशासन के असली रूप को न समझना। इन लोगों के लिए अनुशासन का अर्थ है–डांट–डपट और मार–पीट के जोर से बच्चों को काबू में रखना। कुछ लोग अनुशासन मात्र को ही व्यर्थ और हानिकारक मानने लगे हैं। उनका तर्क है कि अनुशासन से बच्चों का स्वाभाविक विकास रुकेगा। लेकिन बड़ों को बच्चों की रहनुमाई करनी ही होगी। जीवन की चकरीली और पथरीली घाटियों में अपना रास्ता खुद बनाने का बोझ इन नन्हें–मुन्नों पर डालना, इनके साथ ज्यादती करना है।

प्रायः यह देखा गया है कि अनुशासन की माँग बच्चों की ओर से ही आती है। सीमा दूसरे कमरे में बच्चों के साथ खेल रही है। खेलते–खेलते वह एक–दम चीख उठती है। माँ को देखते ही वह भाग कर उससे लिपट जाती है और रोती हुई कहती है कि कमल ने उसे मारा है। उसकी चीख माँ के लिए अनुशासन की पुकार है।

अनुशासन का अर्थ डंडा नहीं है। उसके अर्थ हैं बच्चों के मन में धीरे–2 यह भाव भर देना कि परिवार में रहने के कुछ कायदे होते हैं। जो बच्चे उनका पालन करते हैं वे अच्छे समझे जाते हैं, उनके माता–पिता सदा उनकी प्रशंसा करते हैं। जो बच्चे उन कायदों को नहीं मानते उनकी गिनती गन्दे बच्चों में होती है और उनके माता–पिता उनसे नाराज रहते हैं। जब उनकी समझ में यह बात अच्छी तरह आ जाती है कि इस घर में सबसे अधिक प्यार उस बच्चे को मिलता है, जो परिवार के कायदों को मानता है, तो माता–पिता को प्रसन्न करने के लिए। वे अपने आप ही अनुशासन मानने लगते हैं। माता–पिता को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना होगा कि आज्ञाकारी बच्चे का घर में आदर हो और अड़ियल बच्चे की जिद्द को न सहा जाये।

अनुशासन की नींव है आज्ञाकारिता। बच्चों में बड़ों का कहना मानने की आदत डालिये, अनुशासन में रहना। वे अपने–आप सीख जायेंगे। इस आदत की शुरूआत जितनी छोटी उम्र में हो, उतना ही अच्छा है। देखा गया है कि अवज्ञा का पहला पाठ बच्चे को माता–पिता ही पढ़ाते हैं।

बच्चों को हठी और ढीठ भी माता–पिता स्वयं ही बनाते हैं। वे बड़ों को प्रायः तक तक कोई चीज नहीं लेकर देते जब तक कि वे उस के लिये हठ न करें। माताओं के विषय में तो यह प्रसिद्ध है कि 'बिना रोये माँ दूध नहीं देती।' मुहल्ले में आइसक्रीम वाला आया। राजू ने माँ कहा, 'माँ, आइसक्रीम वाला लौटा जा रहा है और माँ इन्कार करती चली जा रही है, तो वह पैर पटक कर रोने लगा। लाचार होकर माँ ने उसे आइसक्रीम के लिए पैसे दे दिये। यह तरीका ठीक नहीं। माँ को पहले ही सोच लेना चाहिये था कि वह बच्चे को आइसक्रीम देगी या नहीं। एक बार मना करने पर तत्काल 'हाँ, नहीं करनी चाहिये थी–चाहे लाख सिर पटक लेता। बच्चे को जब एक बार विश्वास हो जायेगा कि उसकी माँ एक बार जो कह देती

है वही होता है और जिद्द करने पर वह नाराज हो जाती है, तो फिर वह हठ नहीं करेगा।

बच्चे जब बड़े हो जाते है, तब माता-पिता को कई बार ऐसा लगने लगता है कि वे उनके कहने से बाहर होते जा रहे हैं। प्रायः लड़कियों के बारे में माँ को ऐसी शिकायत रहा करती है, जबकि स्थिति वास्तव में बिल्कुल चिन्ताजनक नहीं होती। होता केवल यह है कि घर की चहारदीवारी से निकल कर लड़कियां जब स्कूल में या मुहल्ले में दूसरी लड़कियों के सम्पर्क में आती हैं तो उनमें आत्मविश्वास भरने लगता है और उनके व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास होने लगता है। तब वे बात-बात में अपनी माँ की ओर न देखकर कई स्थितियों में स्वतन्त्रत रूप से फैसला करके उस पर अमल करना चाहती हैं। ऐसी अवस्था प्रत्येक बच्चे के विकास में आती है, जिसमें माता-पिता को धैर्य से काम लेना होता है। पर माताएं जल्दी धैर्य खो बैठती है और लड़की के सामने ही कहने लगती हैं, बाज आई मैं इस लड़की से। अब इसे कभी काम को नहीं कहूँगी। मेरी बात तो यह सुनती तक नहीं।' इस तरह बच्चे को लाइलाज घोषित करके माताएँ आदर खो बैठती हैं और बिना किसी कारण के उनमें अपराध भावना बढ़ती-बढ़ती उन्हें लापरवाह और ढीठ बना देती है।

कई बार लड़के जब कहना नहीं मानते तो माताएँ उन्हें प्रायः यह धमकी देती हैं ..... अपने पिता को आने दे। आज तेरी मरम्मत न करायी तो मेरा नाम बदल देना!' ऐसा कहकर माताएं स्वयं तो आदर खो बैठती हैं, लड़के को पिता के विरुद्ध भी उकसा देती हैं। इस तरह की धमकियों से अपने पिता पर से बच्चे का विश्वास उठने लगता है। उसके मन में बार-2 यह प्रश्न उठने लगता है कि वे दब्बू हैं जो स्थिति की पूरी तरह जाँच किये बिना माँ के सिखाने भर से पीटने पर उतारू हो जायेंगे।

बच्चों में अनुशासन की भावना भरने के लिए माता-पिता का एकमत होना बहुत जरूरी है। घर में जो कुछ भी नियम लागू किये जायें उन्हें दोनों एक राय होकर बनायें और समान तत्परता से उनका पालन करायें। ऐसा कभी न हो कि एक तो उनके पालन में जरूरत से अधिक सख्ती से काम ले और दूसरा बेहद ढिलाई दिखाये। आपस में मतभेद होने पर माता-पिता को बच्चों के सामने किसी एक का पक्ष लेकर आपस में बहस नहीं करनी चाहिये। माता-पिता के मतभेद को तोड़ने में बच्चों को देर नहीं लगती और इससे उनमें अनुशासन हीनता बढ़ती है।

सच तो यह है कि बच्चों को अनुशासन में रखने की बात सोचने से पहले माता-पिता को स्वयं अनुशासन में रहना होगा। उन्हें स्वयं भी वही करना होगा जो बच्चों को करने के लिए कहें। उन के रहन-सहन और विचार से यह बात पूरी तरह व्यक्त हो जानी चाहिए कि परिवार के नियम छोटे-बड़े सभी पर समान रूप से लागू होते हैं। भूल हो जाने पर माता-पिता को स्वयं सजा पाने के लिए तैयार रहना होगा। सजा का फैसला यदि बच्चों पर छोड़ा जाय तो और भी अच्छा हो। इससे बच्चों का उनकी न्यायप्रियता पर विश्वास जमेगा।

इस तरह सूझ-बूझ और संयम से माता-पिता को बालकों के मन में यह बात बैठा देनी होगी कि घर में अनुशासन का प्रयोग तंग करने के लिये नहीं किया जाता। अनुशासन इसलिए जरूरी है वह सफल जीवन की धुरी है। ❁❁❁

शिक्षा

महर्षि स्वामी दयानन्दजी प्रत्येक बालक और बालिका की सुशिक्षा के बड़े पक्ष–पोषक थे। उनका यह मत था कि शिक्षा के बिना मनुष्य–मण्डल का सुधार होना असम्भव है, उन में एकता का होना नितान्त कठिन है। एक धर्म, एक भाषा, एक उद्देश्य और एक भाव, ये गुण किसी भी जाति की उन्नति के मुख्य साधन हैं, और वे शिक्षा के बिना सम्पादित नहीं किये जा सकते हैं। महाराज शिक्षा का आरम्भ पाठशाला से नहीं मानते थे। उनका विश्वास था कि सच्ची शिक्षा का अथ–श्री तभी से होता है, जब सन्तान माता की कोख में सुरक्षित लता की भाँति पला करती है। उस समय के पैतृक संस्कार सन्तान को अच्छा बुरा बनाने में प्रबल कारण हुआ करते हैं। माता–पिता के आचार–विचार, कर्म–धर्म और भावना–भाव की सन्तान साक्षात् प्रत्याकृति होती है। वैदिक संस्कारों की यह विशेषता सर्वमान्य है।

नन्हें से बच्चे को माँ–बाप किस प्रकार सिखावें, इस विषय में स्वामी जी का यह उपदेश है– 'माता बालक को सदा उत्तम–उत्तम बातें सिखावे जिससे उसकी सन्तान सभ्य बन जाय, और किसी प्रकार की कुचेष्टा (कुव्यवहार न कर सके। जब बच्चा बोलने लगे, तभी से उसकी माता ऐसे प्रयत्न करे जिस से बालक की जीभ कोमल होकर (सधकर) शब्दों का स्पष्ट उच्चारण करने लग जाय। जब बालक कुछ अधिक बोलने सिखावे। छोटे बड़ों से, माता पिता से, प्रतिष्ठित जनों से, राजा और विद्वानों से कैसे मिलना, वर्त्तना, भाषण करना इस रीति–नीति की शिक्षा दे। बैठने–उठने का सभ्याचार समझावें।''

''माता–पिता ऐसा प्रयत्न सदा करते रहें जिससे उनकी सन्तान जितेन्द्रिय बने, विद्या प्रेमी हो और सत्संग में रुचि रक्खे। उनमें रोने झीकने का स्वभाव न उत्पन्न होने दें, लड़ने–झगड़ने की आदत न डालें। उनको सत्यभाषी और निर्भय वीर बनावें। धैर्य रखना, सदा सुप्रसन्न वदन रहना आदि शुभ गुणों का विकास उनमें जैसे भी हो करावें।''

''जब पुत्र–पुत्री पाँच वर्ष के हों, तब उनको देवनागरी अक्षर सिखाना आरम्भ कर देना चाहिए। अन्य देशीय भाषाआं के अक्षरों का अभ्यास कराना भी उचित है। तदनन्तर ऐसे मन्त्र, ऐसे श्लोक, ऐसे सूत्रादि गद्य–पद्य कण्ठस्थ करावें जिनसे उनको अनेकानेक उत्तमोत्तम शिक्षाएँ मिलें, उनकी विद्या बढ़े और धर्म तथा परमेश्वर में प्रीति उत्पन्न हो। वे माता, पिता, आचार्यादि को सम्मान दें, ज्ञानी और अतिथि जनों का आदर आतिथ्य करें। राजा से, प्रजा से, कुटुम्ब से और बन्धुवर्ग से उचित बर्ताव करना सीख जायँ, नौकर–चाकरों के साथ यथायोग्य व्यवहार कर सकें।''

दुर्गणों से बचने की शिक्षा देना भी गुरुजनों का गुरुतर कार्य है, क्योंकि बाल्य–काल में वे ही बालक के तन का, मन का और मस्तिष्क का निर्माण करने वाले और उनको शुभ प्रवृत्तियों में जोड़नेवाले हुआ करते हैं। इस पर स्वामी जी का उपदेश है–''माता–पिता तथा अध्यापक जन बालकों को चोरी–जारी

से बचने की शिक्षा दें। उन्हें ऐसी शिक्षा दें जिससे आलस्य (और) प्रमाद उनके निकट न आने पावे। ईर्ष्या, द्वेष और मोह आदि दुर्गुण दूर हो जायँ और वे सदाचारी बनें।

शिक्षा का एक श्रेष्ठ और सुन्दर अंग शिष्टाचार है। कितना ही कोई पढ़ा-लिखा हो, शरीर से सुन्दर हो, वस्त्रों से सजा हो, और हार-सिंगार से बना-ठना हो, परन्तु यदि उसे शिष्टाचार नहीं आता तो वह सभा-समाज में निर-विहंगम ही दिखाई देगा, लोगों के उपहास ही का स्थान बनेगा। स्वामी जी ने शिष्टाचार की शिक्षा के विषय में यह उपदेश दिया है-"बालकों को चाहिए कि वे दृढ़प्रतिज्ञ हों, यह स्मरण रक्खें कि प्रतिज्ञा भंग करना, वचन देकर न पालना, बड़ा भारी पातक है। वे सदा कृतघ्नता रूप दोष से दूर रहें, क्रोध न करें, कटु वचन उच्चारण न करें। सच्चे, शीतल और मधुर वचन ही बोलें। बहुत बक-बक और वितण्डावाद का स्वभाव न बनावें। उचित, हित और मितभाषी बनें। बूढ़ों को समादर दें, उनको आते देख उठ खड़े हों। अभ्यागमन-पूर्वक उनका स्वागत करें। पहले नमस्ते निवेदन करके उनको उच्चासन पर बैठावें, तत्पश्चात् उनके सामने उत्तम आसन पर आप भी बैठें। सभा समाज में, अपनी योग्यता के अनुसार, पहले ही ऐसे स्थान पर बैठें जहाँ से कोई उठा न सके। किसी से वैर-विरोध न बाँधे। धनी होने पर भी गुणों के ग्रहण और दोषों के परित्याग का स्वभाव न छोड़ें। सज्जनों का सत्संग करें, दुर्जनों से दूर रहें। अपने माता-पिता और आचार्य की तन-मन और धनादि उत्तमोत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करें।" बालकों को चाहिए कि "आज्ञापालन करें। निन्दा कभी न करें। सदा शान्त रह गुरुजनों से पूछने योग्य प्रश्न हाथ जोड़कर पूछें। घमण्डीपन न दिखावे। वस्त्र स्वच्छ रक्खें। उत्तमजनों को सम्मान दें। कृतज्ञ हों। अपने में कृतघ्नता आलस्य-प्रमाद कदापि न आने दें। आत्मिक, मानसिक और शारीरिक बल बढ़ावें।" माता, पिता तथा आचार्य अपनी सन्तान और शिष्यों को सदुपदेश दें और यह भी कहें कि जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं, उन्हीं को आप ग्रहण कीजिये। जो दुष्ट कर्म हों उनको छोड़ दीजिये। जो सत्य समझिये, उसी का प्रकाश और प्रचार कीजिये।"

महर्षि के समय में सरकारी शिक्षा का यंत्र नौकरशाही की दमन-नीति के संकुचित सांचे में ढला था, इस कारण वह ऐसे ही मनुष्य निकालता था जो अधीनस्थ हो कचहरियों की चक्की पीस सकें और दफ्तरों का ताना-बाना भली-भाँति तनते बुनते रहें। यह शिक्षण अनुदार और बहुव्यय-साध्य था, यह धर्म और जातीय भावों से निरा कोरा था। श्री स्वामीजी इसे बदल देना चाहते थे। इस अभद्र भवन के स्थान में वे वैदिक संस्कृति की सर्वांगसुन्दर एक विशाल शाला निर्माण करने की सामग्री उपस्थित कर रहे थे। उनके शिक्षा सम्बन्धी विशुद्ध सिद्धान्तों का सार यह है:-"विद्यालय में सब विद्यार्थियों को समान खानपान, वस्त्र और आसन दिये जाने चाहिए चाहे वे राजकुमार, राजकुमारी हों और चाहे दरिद्र जन की सन्तान, सभी को तपस्वी बनाना उचित है।" ऐसा राजनियम और जातीय नियम हो कि कोई जन अपने लड़के-लड़की को घर में रक्खे-पाठशाला में अवश्यमेव भेजे। जो न भेजे उसे दण्ड दिया जाय। जो जन अपनी सन्तानों को विद्या-दान देते हैं, और जिस देश में उदार भाव से सार्वजनिक शिक्षा दी जाती

है, उसके पति महाराज के भाव इस प्रकार के थे–"वे ही जन धन्यवाद के योग्य हैं, कृतकृत्य हैं जो अपनी सन्तानों के शारीरिक और आत्मिक बल को ब्रह्मचर्य से, उत्तम शिक्षा से और बलिदान से बढ़ाते हैं। जिस देश में ब्रह्मचर्य का पालन, विद्या की वृद्धि और वेदोक्त धर्म का प्रचार हो, वही देश सौभाग्यशाली समझना चाहिए।" (सत्यार्थ प्रकाश में देखें) विद्या विलास मनसो ..... "जिन जनों का मन विद्या–विलास में तत्पर रहता है, जो सत्य–भाषणादि नियम पालन करते हैं, अभिमान और अपवित्रता से ऊपर हैं, दूसरों की मलिनता दूर करते हैं, सत्योपदेश से और विद्यादान से संसारी जनों के दुःख दूर करने से सुभूषित हैं और वैदिक कर्मों से परोपकार करने के लिये रात–दिन लगे रहते हैं, वे नर–नारी धन्य हैं।"

श्री स्वामी जी विद्या का सुस्वादु फल इन शब्दों में वर्णन करते हैं:–"स्वार्थ और परार्थ, इन दो प्रयोजनों को विद्या सिद्ध करती है। ऐसा आत्मा किस मनुष्य का होगा जो सुख सिद्ध करने वाले व्यवहारों को छोड़कर उल्टे आचरण करने में प्रसन्न हो? क्या यथार्थ व्यवहार किये बिना किसी को सर्व सुख मिल सकता है? क्या सुशिक्षा के बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की उपलब्धि हो सकती है? और क्या विद्या–विहीन जन पशु समान नहीं हैं? सत्य तो यह है कि आज तक किसी मनुष्य को विद्या के बिना सुख प्राप्त नहीं हुआ। विद्या–प्राप्ति से वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान, व्यवहारों का यथावत् बोध प्राप्त करके आप सुखी होना और परोपकार द्वारा जनता को सुखी करना विद्या का फल है। जिस देश में, जिस जन में, विद्या–रूप सूर्य का अभाव है और अविद्यान्धकार की वृद्धि है, वहाँ दुखों की भरमार हुआ ही करती है। जहाँ विद्या का सूर्य अपने प्रकाश से अविद्यान्धकार को नष्ट कर देता है, उस देश और आत्मा में सदा आनन्द का संयोग बना रहता है और दुःखों को कहीं ठोर ठिकाना नहीं मिलता।"

स्वामी जी महाराज देवनागरी अक्षरों और आर्य भाषा के बड़े पक्के पक्षपाती थे। वे चाहते थे कि भारतवर्ष भर में इनका प्रचार हो जाना चाहिए। प्रत्येक आर्यसमाजी के लिये आर्य भाषा सीखना उन्होंने आवश्यक ठहराया है। यद्यपि उनकी अपनी मातृ भाषा गुजराती थी, उसमें वे बड़ी सुगमता के साथ अपनी पुस्तकें लिख सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण पुस्तकें आर्य भाषा में ही लिखवाईं और छपवाईं। अपने जन्म–देश में भी जाकर व्याख्यान दिये तो आर्य भाषा ही में दिये। उनका भारत भर में भाषाऐक्य करने का यह उत्कृष्ट कर्म देश के निवासियों को सदा स्मरण रहेगा।

एक बार एक सज्जन ने स्वामी जी से निवेदन किया–"भगवान यदि आप अपनी पुस्तकों का अनुवाद कराके फारसी अक्षरों में छपा दें तो पंजाब आदि प्रान्तों के जो लोग नागरी अक्षर नहीं जानते, उनको आर्य धर्म के जानने में बड़ी सुविधा हो जाय।"

उत्तर में स्वामी जी बोले–'भाई, अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करता है। नागरी अक्षर थोड़े ही दिनों में सीख लिये जाते हैं। आर्य भाषा का सीखना भी कुछ कठिन नहीं है। अरबी फारसी के शब्दों को छोड़कर ब्रह्मावर्त की सभ्य भाषा ही आर्य भाषा है। यह सुकोमल और सीखने में सुगम है। जो

–शेष पृष्ठ संख्या 34 पर

शील का सर्वोत्तम स्थान

लेखकः हरिनाम दास

एक गागर में तीन सागर

साधारणतः शील का अभिप्राय मधुर व्यवहार एवं अच्छा बर्ताव है। परन्तु वास्तव में शील का भाव बहुत ही विशाल है। सारे गुण इस एक ही शब्द के अन्तर्गत हैं। यदि इस पुस्तक में शील का विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाये, तो स्त्रियों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होगा, क्योंकि सब अन्य गुण एक ओर, और शील का गुण एक ओर। प्रत्युत फिर भी अन्य सब गुणों की अपेक्षा शील का ही पलड़ा भारी होगा। मृत्यु के पश्चात् भी यदि मनुष्य किसी के किसी गुण को स्मरण रखता है, तो वह सुचरित्र या शील ही है। गुरु ने शिष्य से पूछा, सबसे अधिक सुगन्धि किसकी है? शिष्यों ने गुलाब, चम्पा, चमेली, रात की रानी आदि कई पुष्पों के नाम लिये, परन्तु गुरु 'न' ही कहता रहा। अन्त में गुरु ने बताया कि सबसे अधिक सुगन्ध मनुष्य की है, जो सैकड़ों हजारों मील दूर पहुँचती है, और हजारों वर्षों तक सुगन्ध दिये रहती है, जैसे महारानी सीता की, जैसे महात्मा गाँधी की, योगीराज कृष्ण की, श्री रामकृष्ण परमहंस की, शाहजादा हातमबाई की, महात्मा बुद्ध की, स्वामी दयानन्द की तथा अन्य महापुरुषों की। शील ही तो है, जो मनुष्य को सुगन्धित करता है।

पत्नी बुद्धिमती होना, सुन्दर होना, गृह-प्रबन्ध में चतुर होना, पुत्रवती होना, या स्वस्थ होना, यह सब कुछ तो उसके अपने लिए ही हैं, और अधिकतर इनसे वह स्वयं ही लाभान्वित होती है। परन्तु सुशील होना ऐसा गुण है, जिसका प्रभाव सब सम्बन्धियों तथा अन्य पड़ौसियों पर पड़ता है। पत्नी के अच्छे या बुरे होने का निर्णय प्रायः दूसरे लोग ही करते हैं, और शील ही एक ऐसा गुण है जिसे देखकर लोग किसी को अच्छा और किसी को बुरा कहते हैं। प्रत्येक पत्नी चाहती है कि लोग उसे अच्छा कहें। इस कारण उसे सुशील बनने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए। तदर्थ इस विषय में यहां कुछ पथ-प्रदर्शन करना और कुछ विशेष शिक्षाएँ लिखना आवश्यक समझा गया है।

एक पण्डित ने एक नगर में एक मास रामायण की कथा समाप्त की। एक भक्त ने जो नित्य कथा सुनने आता था, कथा समाप्ति के दिन पण्डित जी से कहा, "पण्डित जी आपने इतने दिन हमारे लिए कष्ट उठाया, आपकी बड़ी कृपा हुई। परन्तु मैंने तो सारी रामायण का अर्थ दो शब्दों में निकाला है, जो इस प्रकार है-

एक राम इक रावन्ना, वह क्षत्री वह माहमन्ना।
उसने उसकी त्रिया हरी, उसने उसकी मौत करी।।

बात का बन गया बातन्ना, तुलसी कथ गया पोथन्ना।।

अर्थ– एक राम था, एक था रावण। रावण ने राम की स्त्री चुराई, राम ने उसे मार दिया। बात तो इतनी ही थी, परन्तु तुलसी ने बात इतनी विस्तार से लिख दी कि बहुत बड़ा पोथा (महान ग्रन्थ) बन गय।

सो महाराज बात तो है जरा सी, परन्तु मूर्खों के समझाने के लिये उपदेश आपने बहुत दिया है।'' पंडित जी ने कहा–''बिल्कुल ठीक कहा आपने। आपने गागर में सागर भर दिया है।''

यदि हम भी शील के सागर को शब्दों के गागर में भरना चाहें, तो इस प्रकार शील का वर्णन कर सकते हैं–

पेशदस्ती सलाम में अच्छी। खुश कलामी कलाम में अच्छी॥

अर्थात् जो पहले नमस्कार करे, वही भद्र है; और जो बोलचाल में मधुर भाषी हो, वही श्रेष्ठ है।

आपके घर कोई मिलने आये या आप किसी के घर जायें, अथवा राह चलते कोई मिल जाये, शीलवती पत्नी सदैव पहले नमस्ते, नमस्कार आदि कहेगी। वह या न देखती रहेगी कि पहले मुझे दूसरी बुलाये। वह यह कभी नहीं सोचेगी–''ऊँह! मैं क्या किसी से कम हूँ?'' नहीं, सुशील पत्नी का हाथ सत्कार अभिवादन में पहले ही उठेगा। उसकी मधुर वाणी पहले ही विकसित होगी। गोस्वामी तुलसीदास जी ने मित्र या सहेली की व्याख्या करते हुए, इस गुण को बहुत ऊँचा स्थान दिया है। वे कहते हैं–

''आवत को आदर करे, जावत नावे सीस।
तुलसी ऐसे मित्र को, मिलिये बिसवै बीस।।''

जिस किसी को आपसे वार्तालाप करने का अवसर मिले, उसका हृदय शीतल हो जाय; आँखें प्रसन्नता से खिल उठें, और वह सहस्र मुख से आपकी प्रशंसक बन जाये। मधुर वाणी सर्वोत्तम वशीकरण है, गोस्वामी तुलसीदास जी ने क्या अच्छा लिखा है–

'तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजे चहुं ओर।
वशीकरण इक मन्त्र है, तज दे वचन कठोर।।'

कटु शब्द तो कभी किसी के मुँह पर आना ही नहीं चाहिये। शत्रु को भी लाचार कर देने वाला मंत्र एक मधुर भाषण है। प्रश्न उठेगा कि कई बार कर्त्तव्यवश या सच्चाई प्रकट करने के लिये कटुवचन जिह्वा पर आ ही जाता है; इसके उत्तर में मनु भगवान ने जो दिव्य उपदेश दिया है, आपको बताये देते हैं, इससे आपकी सब शंकायें दूर हो जायेंगी–

''सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात्, मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।''

अर्थात् सत्य बोलो, पर मीठा बोलो; ऐसा सत्य भी न बोलो, जो कड़वा लगे। सच्ची बात यदि कड़वी है, तो उसके लिये भी मीठे, शब्द ढूंढ़ो, और यह कोई कठिन काम नहीं। जो स्त्री बुरे से बुरा व्यवहार करने वाले के साथ भी प्रेम का व्यवहार करती है, वह एक अनमोल रत्न है, प्यार का मारा हुआ सदा के

लिए मर जाता है, उसे फिर बुराई करने का साहस नहीं होता। परन्तु ईंट का उत्तर पत्थर देने से, या ताने, उलाहना, बोली ठोली से बात बहुत बिगड़ जाया करती है।

"निकाला चाहता है काम तानों से भला गालिब।'
तेरे बेमिहर कहने से वह तुझ पर मिहरबां क्यों हो?"

बहुत सी स्त्रियों को ताने उलाहने और बोली ठोली की बुरी लत होती है। यह हृदय को बेंध देते हैं। सुनने वाले के धैर्य व शान्ति को खो देते हैं, और कई बार सारे कुल पर विपत्ति लाते हैं। भीम ने दुर्योधन को 'अन्धे की सन्तान' होने का ताना मारा, तो पांडवों का हजारों मील फैला हुआ फलता फूलता चक्रवर्ती राज्य नष्ट हो गया। लाखों मनुष्य कट मरे, सारे विज्ञानी और योद्धा धूल में मिल गये, भारतवर्ष पर अन्धकार के बादल छा गये; प्रत्युत कहने वाले तो यहां तक कहते हैं कि भारत की आधुनिक अवस्था तथा इतनी लम्बी पराधीनता का मूल कारण भीम की वही एक कड़वी बात है।

तलवार का घाव भर जाता है, परन्तु बात का घाव कभी नहीं भरता। कटु-भाषिणी स्त्री नागिन के समान है, सब उससे दूर ही रहना चाहते हैं। मधुर-भाषिणी स्त्री सुधा-समुद्र है, सबके सब स्वयमेव ही उसकी ओर खिंचे चले आते हैं।

हर कुजा चशमाए ववद शीर।
मरदुमां मुर्गो मोर गर्दायन्द।।

अर्थात् जहाँ जल का मीठा स्रोत होगा; मनुष्य, पशु, पक्षी और कीड़े-मकोड़े सब वहीं खिंचे आयेंगे। भगवान हम सबको ऐसी सुमति प्रदान करें।

कई स्त्रियां बड़े चिड़चिड़े स्वभाव वाली होती हैं। तनिक-2 सी बात में वे अपना अपमान समझती हैं। वे स्वयं तो दूसरों से हंसी-मखौल कर लेंगी, परन्तु किसी ने उनको हंसी में यदि कोई बात कह दी, तो वे अपना बड़ा निरादर समझने लगती हैं। अंग्रेजी में ऐसी स्त्री को (Thin skinned) या पतली चमड़ी वाली कहते हैं। साधारण-सी बात भी उन्हें चुभ जाती है और फिर उनसे पल्ला छुड़ाना कठिन हो जाता है।

युक्तियाँ घड़नेवाली, दलीलबाज बातूनी स्त्री प्रेम के माधुर्य को नष्ट कर देती है। यदि आपके स्वभाव में कुछ भी चिड़चिड़ापन है, या बहुत युक्ति लड़ाने और दलीलें छांटने का स्वभाव है, तो उसे दूर कीजिए; अन्यथा आपकी सत्यता, सच्चरित्रता तथा बुद्धिमता का मूल्य फूटी कौड़ी पड़ जायगा।

सुशील पत्नी का एक और गुण अतिथि-सेवा है महाराजा रणजीतसिंह एक बहुत बुद्धिमान और प्रतिभाशाली राजा हो चुके हैं। उनसे जब राज्य का रहस्य पूछा गया, तो उन्होंने कहा-"तलवार और अतिथि सत्कार-तेग-देग की फतह।" शत्रुओं को तलवार से जीतो और मित्रों को सत्कार से, फिर निर्भय होकर राज्य करो। जिसने तलवार का फल चखा होगा, न तो वह आपसे विरोध कर सकेगा, और न ही वह कर सकेगा, जिसने आपका नमक खाया होगा। अब लड़ाई भिड़ाई का काम नहीं, तीर तलवार के दिन

नहीं, अब तो बुद्धि का युग है। अतः शत्रु को वश में रखने का एक ही उपाय चातुर्य रह जाता है, और बुद्धिमत्ता भी यही है कि–

"जो गुड़ दीन्हे ही मरत, क्यों विष दीजे ताहि।"

हां, तो व्यवहार–पटु सुशील पत्नी का तीसरा सद्‌गुण अतिथि–सत्कार है; जो कि उदारता पर आश्रित है। अनुदार, कृपण और स्वार्थी पत्नी कभी अतिथि–सत्कार नहीं कर सकती और न ही वास्तव में सुशीला कहला सकती है। भारतवर्ष में आदिकाल से अतिथि–सत्कार का गुण पाया जाता रहा है। अब कोई 40–50 वर्ष से ही पैसे का प्यार बढ़ रहा है, और लोग हर बात में लेखा करने लगे हैं कि इतने का खान, खिलाऊंगा तो कभी इतने का लाभ भी उससे उठा सकूंगा या नहीं। इसके विपरीत पहले काल में किसी नगरी में यदि कोई परदेशी जा निकलता, तो बड़ी श्रद्धा से भोजन कराया जाता, रात को ऐसा बिछौना दिया जाता कि पथिक को अपने घर में भी शायद कभी न मिलता। प्रत्येक घर में कम से कम तीन अतिथियों के लिए बिस्तर हर समय प्रस्तुत रहता था। ऐसे भी घराने थे कि जब तक अतिथि भोजन न कर ले, घर वाले स्वयं भी भोजन नहीं करते थे। वेद में भी आया है–

"केवलं अत्ति विषं अत्ति।"

अर्थात् जो अकेला खाता है, वह विष खाता है। अतिथि–सत्कार मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है और इसका पालन शुद्ध हृदय से वे लोग करते थे। परन्तु अब तो यह हाल हो गया है कि परदेशी बेचारे से कोई पूछता भी नहीं कि भाई तुमने कुछ खाया भी है या नहीं, आओ तनिक विश्राम ही कर लो। न ही पथिक किसी से यह आशा रखता है। प्रत्युत जहाँ कोई रोटी वाले की दुकान न हो, वहां तो पथिक पाव आध सेर आटा खरीद कर किसी से पकवा भी नहीं सकता। न तो किसी के घर फालतू बिस्तर होता है, और न ही कोई बिना बिस्तर आजकल घर से बाहर निकलता है।

पत्नी को चाहिए कि अपने घर में एक बार फिर अतिथि–सत्कार को, जो इसके पूर्वजों का गुण था, अपनी सामर्थ्य के अनुसार व्यवहार में लाए। इससे घटता कुछ नहीं, सब कोई अपने भाग्य का ही खाता है। आपका दिया कोई कुछ नहीं खाता। अतिथि के आशीर्वाद से अतिथिपूजक का घर धन–धान्य से भरपूर रहता है, दूर–दूर यश और कीर्ति की वृद्धि होती है। वैसे भी जो आनन्द और हार्दिक सन्तोष दूसरों को खिलाने में है, वह अकेले खाने में कहां?

अब दूसरी बात। अतिथि–सत्कार में दिखावा नहीं करना चाहिए। घर में एक साग भाजी बनती है, तो एक ही से खिलाओ, या अतिथि के लिए दो पकाओ। बहुत करो, तो हलवा या खीर आदि कोई एक वस्तु बना दो; परन्तु न तो ऋण लेकर ही खिलाओ, न इतना गरिष्ट भारी सात रंगा और सात स्वादों वाला दुष्पाच्य खिलाओ कि अतिथि सत्कार की अपेक्षा अभिमान और अमीरी के प्रदर्शन का शौक अधिक टपकता हो। जिसे खिलाओ, आदर और प्रेम से खिलाओ। अतिथि आपके प्रेम का भूखा है; सत्कार से दिया हुआ शाक उस अभिमान, अनादर, अनिच्छा या लाचारी से दिये हलवे पूरी से अच्छा लगेगा।

–(शेष अगले अंक में)

बिना परीक्षा के व्याह

लेखकः हनुमानप्रसाद शर्मा

पर हथ बनिज सँदेसे खेती।
बिन वर देखे व्याहें बेटी।।

एक सेठजी ने अपनी कन्या के जिसकी अवस्था आठ वर्ष की थी विवाह के लिए एक नाई को भेजा। नाई कुछ दूर चल कर दूसरे गाँव में पहुँचा। वहाँ एक लालाजी ने नाई को कुछ दे दिया। दही, बूरा खिलाकर विवाह निश्चय कर लौटा दिया। जब नाई लौटकर आया तो लालाजी ने कहा–"कहो नाऊ–ठाकुर, विवाह कर आये?" कहा–"हाँ लालाजी, व्याह ठीक हो गया।" लालाजी ने कहा कि–"वर की अवस्था क्या है?" नाऊ ठाकुर ने उत्तर दिया–"लालाजी, बीस–बीस–बीस!" लालाजी ने कहा–"और धन वन?" नाऊ ठाकुर ने कहा– "लालाजी, धन तो इतना अधाधुन्ध है कि कहीं कोई लिए जाता, कहीं कोई लिए जाता, पर वह कुछ देखते ही नहीं।" लालाजी ने पूछा–"और इज्जत भलमन्सी कैसी है?" नाऊ ठाकुर कहा–"लालाजी, चार आदमी हर समय साथ चलते है, इज्जत मरजाद को क्या कहना।" लालाजी ने कहा–"और वर का स्वभाव कैसा है?" नाऊ ठाकुर ने कहा–"लालाजी, चाहे कोई शिकायत लावे, सुनते ही नहीं। बड़ा सीधा स्वभाव है।" लालाजी के सब संदेह दूर हो गए और व्याह ठीक हो गया और भी जो मध्य की रीतें थीं सब नाऊ ठाकुर कर करा आये। जब व्याह का दिन आया और लड़का भाँवरों में गया तो बरातवालों में से एक ने उसे गोद में उठा पाटे पर बिठाल दिया। तब तो लोगों ने वर को देख कहा–"नाऊ ठाकुर, यह लड़का कैसा? तुम तो कहते थे कि बीस वर्ष का है?" नाऊ ठाकुर ने कहा–"लालाजी, आप न समझें तो मैं क्या करूँ, हमने नहीं कहा था कि बीस बीस बीस?" पुनः लालाजी ने कहा–"यह तो अन्धा भी है।" नाई ठाकुर ने कहा–"सरकार, हमने तो यह भी कहा था कि उनके यहाँ से चाहे कोई कुछ ले जाय देखते ही नहीं।" जब पण्डित ने वर से कहा–"जल ले आचमन कीजिये।" वर ने सुना ही नहीं। तब लालाजी ने कहा कि–"यह तो बहिरा भी है।" नाई ने कहा–"लालाजी, हमने तो कहा था कि उनसे चाहे कोई शिकायत करे सुनते ही नहीं, स्वभाव के बड़े सीधे हैं।" पुनः पण्डित ने कहा–"आप उस पाटे पर जाइये।" तब चार आदमियों ने उठा कर बिठाया। तब तो लालाजी ने कहा–"यह तो लँगड़ा भी है।" नाई ने कहा–"लालाजी, हमने नहीं कहा था कि चार आदमियों के साथ चलते हैं, वह ऐसे इज्जतदार हैं।"

❁❁❁

जाति कभी नहीं छिपती

जिस समय शिवाजी महाराज का मुसलमानों से युद्ध हो रहा था तो शिवाजी ने अपने सरदारों और सिपाहियों को यह हुक्म दिया था कि–"जहाँ मुसलमान देखो, मार दो।" यह खबर पा बहुत से मुसलमानों ने चन्दन टीका पाटा जनेऊ भी पहिर लिये थे। एक बार एक मुसलमान शिवाजी के सामने पड़ा। शिवाजी ने पूछा–"तू कौन है?" इसने कहा–"बरेहमन।" पूछा–"कौन बरेहमन?" कहा–"गौड़।" शिवाजी ने पूछा–"कौन गौड़?" यह बोला–"या अल्ला, गौड़ों में भी और?" शिवाजी ने कहा–"अरे मार, मार, यह बरेहमन नहीं तुरक है।" ❁

पृष्ठ संख्या 28 का शेष–

मनुष्य देश में जन्म लेकर अपनी भाषा तक के सीखने में परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है? उसको धर्म की लगन है, इसका भी क्या प्रमाण है? महाशय, आप तो अनुवाद की सम्मति देते हैं। परन्तु दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक देवनागरी ही के अक्षरों का प्रचार होगा। मैंने भारतवर्ष में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने ही के भाव से अपने सारे ग्रन्थ आर्य भाषा में बनाये और छपवाये हैं।"❁❁❁

पाठकों से नम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2015 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2016 के वार्षिक शुल्क के साथ शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सुचारू रूप से आपको प्राप्त होते रहें। इस वर्ष का विशेषांक **"भारत और मूर्तिपूजा"** बहुत जल्दी ही आपके हाथों में होगा। **–व्यवस्थापक**

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

श्रीमद् भगवद् गीता (एक सरल अध्ययन)	प्रेस में
चार मित्रों की बातें	प्रेस में
गृहस्थ जीवन रहस्य	प्रेस में
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	प्रेस में
संन्ध्या रहस्य	प्रेस में
बालक जो महान बने	प्रेस में
चित्रमय दयानन्द	प्रेस में
श्रीमद् भगवद्गीता तत्व दर्शन	प्रेस में
शान्ता	प्रेस में

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

वैदिक स्वर्ग की झाँकियाँ	मूल्य 40)	दयानन्द और विवेकानन्द	मूल्य 15)
बाल सत्यार्थ प्रकाश	मूल्य 30)	बाल मनुस्मृति	मूल्य 12)
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30)	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	मूल्य 12)
मील का पत्थर	मूल्य 20)	ओंकार उपासना	मूल्य 12)
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20)	दादी पोती की बातें	मूल्य 10)

वैदिक और लौकिक संस्कृत शब्दों के ज्ञान की अलौकिक कुंजी है। संस्कृत साहित्य का कोई भी शब्द इसकी पकड़ से बाहर नहीं है। वेदांगों में व्याकरण प्रमुख है, व्याकरण के बिना हम भाषा पर अधिकार करने में सफल नहीं हो सकते। महर्षि पाणिनि ने समस्त भाषा के नियमों को सूत्र रूप में प्रस्तुत कर दिया है। जिससे अल्प परिश्रम करके अल्प काल में ही व्यक्ति भाषा का अधिकारी विद्वान् बन जाता है। महर्षि दयानन्द महाराज का तो यहाँ तक कहना है कि जितना ज्ञान महर्षि पाणिनि द्वारा प्रस्तुत की गई पद्धति से साढ़े तीन वर्ष में हो जाता है। उतना ज्ञान अन्य प्रकार से पचास वर्ष में भी नहीं होगा। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुये गुरुवर विरजानन्द जी ने महर्षि दयानन्द को विद्या पढ़ाकर आर्ष विद्या के पठन-पाठन करने का मार्ग प्रशस्त करने का निर्देश दिया था। गुरुकुलीय परम्परा में वही क्रम अपनाया जाता है। इस क्रम में अष्टाध्यायी के लगभग चार हजार सूत्रों को याद करना ब्रह्मचारियों के लिये दुरुह कार्य होता है। ब्रह्मचारियों को आर्ष विद्या के प्रति उत्साहित करने के लिये मथुरा निवासी अध्यापक ब्रजेश रावत जी ने घोषणा कर रखी है कि जो भी ब्रह्मचारी सम्पूर्ण अष्टाध्यायी याद करेगा उसको वे ग्यारह सौ रुपये देकर पुरस्कृत करेंगे। इस अवसर पर गुरुकुल के ब्रह्मचारी मोहित आर्य, ब्रह्मचारी अवनीश आर्य, ब्रह्मचारी बृजकिशोर आर्य ने अष्टाध्यायी को सम्पूर्ण रूप से कण्ठस्थ किया। माननीय रावत जी ने सभी को ग्यारह- ग्यारह सौ रुपये देकर सम्मानित किया। उनसे प्रेरणा लेकर श्री पूरनसिंह आर्य ने सभी बच्चों को ग्यारह- ग्यारह सौ रुपये देकर सम्मानित किया। सम्पूर्ण कार्यक्रम बड़े ही श्रद्धापूर्ण भाव से सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम के बाद भोजन प्रसाद की व्यवस्था में आये सम्पूर्ण व्यय का भार मथुरा के पूर्व जिला परिषद के अध्यक्ष चौ0 अनूपसिंह ने वहन करने की घोषणा की। जिसका सभी ने हर्ष ध्वनि से स्वागत किया। इस अवसर पर अलीगढ़, हाथरस, कासगंज, एटा, बदायूँ, फरुखाबाद, मैनपुरी, औरैया, इटावा, फिरोजाबाद, आगरा, गाजियाबाद, मेरठ, बुलन्दशहर, सम्भल, अमरोहा आदि जनपदों मध्यप्रदेश, हरियाणा, सीमावर्ती जिले भिण्ड, मुरैना, ग्वालियर, हरियाणा के गुड़गांव, पलवल, फरीदाबाद, राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर, जयपुर, अजमेर आदि स्थानों के आर्यों ने अपनी उपस्थिति से कार्यक्रम को गौरव प्रदान किया।

श्री विरजानन्द ट्रस्ट के पदाधिकारियों की ओर से कार्यक्रम में आये हुये श्रद्धालुओं, वानप्रस्थियों, संन्यासियों, विद्वानों, उपदेशकों का आभार प्रकट किया गया। ट्रस्ट द्वारा संचालित सभी प्रकार के गति-विधियों के बारे में जनता को अवगत कराया गया। ज्ञातव्य है कि विरजानन्द ट्रस्ट के अधीन गुरुकुल, डी.ए.वी. स्कूल, तपोभूमि मासिक, सत्य प्रकाशन, गौशाला ग्रामीण क्षेत्रों में वैदिक संस्थाओं के स्थापना व गाँव-गाँव वेद प्रचार का कार्य आदि गतिविधियाँ बड़े ही व्यवस्थित ढंग से चल रही हैं। इसका सारा श्रेय वेद मन्दिर से जुड़े निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं और उदारमना दानी लोगों के द्वारा अप्रतिम सहयोग के कारण ही होना सम्भव हो रहा है। वेद मन्दिर एक समर्पित ऋषिभक्त तपस्वी महामना आचार्य श्री प्रेमभिक्षु जी महाराज के द्वारा अनुप्राणिक संस्था है। इन्हीं की तपस्या हम सबमें प्रेरणा के रूप में काम कर रही है। इसीलिये यह संस्था अपने में निर्विवाद है। जो भी कार्य होता है सभी लोग व्यक्तिगत स्वार्थों को पीछे रखकर पहले संस्था का हित सर्वोपरि मानकर काम करते हैं। इसी के परिणामस्वरूप कई पवित्रमना व्यक्ति संस्था से स्वयं आकर जुड़ गये हैं। अनायास भव्य गौशाला, भव्य यज्ञशाला, भव्य सत्य प्रकाशन का भवन इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि संस्था के प्रति समर्पण का भाव आचार्य श्री प्रेमभिक्षु जी की तपस्या का ही परिणाम है। कविवर रामधारीसिंह दिनकर ने ठीक ही लिखा है कि-

जहाँ कहीं है ज्योति जगत में, जहाँ कहीं उजयाला।
वहाँ खड़ा है कोई उसका, मूल्य चुकाने वाला।।

आशा और विश्वास है कि वेद मन्दिर से जुड़ा हमारा सारा तपोभूमि का परिवार इसी तरह हमारा साथ देता रहेगा इसके परिणामस्वरूप राष्ट्ररक्षा और धर्मरक्षा का कार्य इस केन्द्र से दिन-रात फलता फूलता रहेगा। भारत को पुनः विश्वगुरु के पद पर अभिषक्त करने में हम सब समर्थ होंगे। समस्त मानवता का परित्राण होगा और हम सब अपने पूर्वजों के नाम को जय की भावना को पूरा कर सकेंगे। ❀❀❀

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (प्रेस में)		भ्रांति दर्शन	20.00
शंकर सर्वस्व	120.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
नारी सर्वस्व (प्रेस में)		बाल मनुस्मृति	12.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	ओंकार उपासना	12.00
शुद्ध हनुमच्चरित (प्रेस में)		शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
विदुर नीति	40.00	दादी पोती की बातें	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
चाणक्य नीति	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
वेद प्रभा	30.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
शान्ति कथा	30.00	सच्चे गुच्छे	8.00
नित्य कर्म विधि	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
यज्ञमय जीवन	30.00	गायत्री गौरव	5.00
दो बहिनों की बातें	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
दो मित्रों की बातें	30.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
चार मित्रों की बातें	20 .00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
मील का पत्थर	20.00	जीजा साले की बातें	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2016 के लिये वार्षिक शुल्क 150/– रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/– भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक–पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

.....

.....

.....

.....

..... पिन कोड .....

पत्र व्यवहार का पता :–
व्यवस्थापक – कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर– गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल– 9759804182

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिंग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600